श्रीकृष्ण-सन्देश
वर्ष : ६ • अंक: ५

मानस-मार्तण्ड पं० श्री रामकिंकर जी उपाध्याय श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके मंचपर श्रीरामचरितमानसका प्रवचन कर रहे हैं

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

★

श्रीकृष्ण संवत् ५०७०

वर्ष : ६ अङ्क : ५

दिसम्बर १९७०

★

वार्षिक शुल्क : ७.००

आजीवन शुल्क : १५१.००

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

विषय-सूची

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान : प्रेरणाप्रद

प्रत्यक्षदर्शियोंके उद्गार

(दिसम्बर १९७०)

★

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिके दर्शनका पुनः सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस बार अधिक सन्निकट रहनेका सुअवसर भी प्राप्त हुआ। श्रीकृष्णकी लीला-भूमिमें श्रीरामके पावन चरित्रकी चर्चा करनेमें अपूर्व सुख और रसकी अनुभूति हुई। आदरणीय पं० देवधरजीकी देख-रेखमें इस पावन भूमिकी उत्तरोत्तर उन्नति तथा सांस्कृतिक अभ्युदय होगा, ऐसी पूर्ण आशा है।

रामकिंकर उपाध्याय
जैपुरिया अतिथि-गृह
वाराणसी

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिमें आकर बहुत खुशी हुई।

सूरजदेवी कोठारी
रूबी हाउस
८ इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता—१

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान देखकर बहुत आनन्द प्राप्त हुआ एवं श्री बड़ा बाबूजी श्रीजुगल किशोरजीकी भी याद आयी। उन्हींका यह धार्मिक प्रचार है।

बैजनाथ साव-पिकानी
भगतूराम रूँगटा „
बहादुरमल रूँगटा „

यहाँके अधिकारियों तथा भगवत्प्रेमियोंकी मंगल-प्रेरणासे इस लोकपावन पुण्यभूमि श्रीकृष्ण-जन्मभूमिमें आकर भगवद्दर्शन एवं भगवत्कथा करनेका महान् सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मैं इस सुयोगका असाधारण महत्त्व अनुभव करता हूँ और एतदर्थं आन्तरिक उपकृति व्यक्त करता हूँ। श्रीहरि अहेतुकी अनन्त कृपा करें—जिससे यह स्थान समस्त विश्वके लिए प्रेरक तीर्थ और ज्ञानपीठके रूपमें चिराराधनीय हो जाये। भारतके समस्त आस्तिकोंका एकान्तिक धर्म है—इसकी सेवा और सहयोग करना। मैं इस स्थानके हेतु जब कभी भक्तजन स्मरण करेंगे सेवार्पण करनेके लिए समुद्यत रहूँगा और सौभाग्य मानूँगा।

अतुलकृष्ण गोस्वामी
वैजयन्ती, ३३–ज्ञानगुदड़ी,
वृन्दावन।

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका दर्शन कर कृतार्थ हुआ। जिनकी महिमा वर्णनातीत है, उसकी विमल छटा यहाँसे विश्वको प्राप्त हो। श्रीकृष्णचरणोंमें यही प्रार्थना है।

नृसिंहवल्लभ गोस्वामी
वृन्दावन।

I feel supremely happy to visit this ancient holy place, where Lord Krishna born. I am glad to see the renovation work.

C. Y. Ramakrishna
Minister for Health
Govt. of Mysore

It was a real pleasure to visit the birth place of Bhagwan Krishna. It is my wish that Bhagwat Bhawan should be one of the best places of worship in the world.

D. R. Bhumbala
Director Central Soil Salanity
Research Institute,
Karnal (Haryana)

It was for us a rare pleasure to be admitted to have a look at Lord Krishna's Birthplace. We have been very much impressed by the faith of the people.

Michel and Richer Hulin
(French)
C/O Efeo, Deccan college
Poona-6.

I found much pleasure to have darshan of the Janma-sthan here at Mathura.

Bhakti Keval Audulomi
President Gaudiya Mission
Calcutta-3.

We are very happy to visit this old temple; The birth-place of our Lord Krishna.

Dr. M. Thillai Nayagam
29. Jalan Tok Ham
Kuala Trengganu
West Malaysia.

श्रीहरिः

'श्रीकृष्ण-सन्देश'के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखोंद्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिकता, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोधको जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

● **नियम :** उद्देश्यमें कथित विषयोंसे सम्बद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छाँट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें छापने, न छापनेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख बिना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक ही पृष्ठपर बायें हासिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख सम्पादक—'श्रीकृष्ण-सन्देश' रू० नं० ६, कैलगढ़ कालोनी, जगतगंज-वाराणसीके पतेपर भेजें।

● 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एक बार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चंदेमें उनके जीवनभर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मिलता रहेगा।

ग्राहकोंको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनिआर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

● **विज्ञापन :** इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता :
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

वर्ष : ६] मथुरा, दिसम्बर १९७० [अङ्क : ५

शत्रु और मित्र

जिन दो व्यक्तियोंमें शत्रुता होती है, वे दोनों एक दूसरेको मिटा देना या उखाड़ फेंकना चाहते हैं। अतः शत्रुसे बचे रहनेकी आवश्यकता होती है। बुद्धिमान और नीतिज्ञ वह है, जो स्वयंकी रक्षा करते हुए शत्रुको अपने मार्गसे हटा दे। मित्र सहायक होते हैं, अतः उनका संग्रह कर्तव्य है। किन्तु शत्रु पग-पगपर बाधाएँ पहुँचाते हैं; अतः उनसे सतत सावधान रहनेकी आवश्यकता है। शत्रु और मित्र सामान्यतः दो प्रकारके होते हैं—सहज और कृत्रिम। कृत्रिम शत्रुको तो साधु वर्तावसे मित्र बनाया जा सकता है; किन्तु सहज शत्रु भयंकर होता है; अतः उसे मिटा देनेमें ही कल्याण है। शत्रु और मित्र दोनोंकी पहचान आवश्यक है। पहचाननेपर ही तुम शत्रुसे अपना बचाव कर सकते हो और मित्रसे यथेष्ट लाभ उठा सकते हो। यदि पहचाननेमें भूल हुई तो तुम शत्रुको भी मित्र मानकर धोखा खा सकते हो और मित्रको भी शत्रु समझकर उसके साथ अनुचित वर्ताव करके उसे शत्रु बना लोगे और भारी हानि उठाओगे। इसलिये शत्रु और मित्र पहचानो।

प्रत्येक इन्द्रियका अपना विषय है और उसीमें उसका राग या द्वेष होता है। जैसे सुन्दर मनोरम रूप नेत्रको बलात् आकर्षित कर लेता है; उसमें नेत्रोंकी आसक्ति हो जाती है। यह राग है। भद्दे और कुत्सित रूपको देखकर नेत्र विचक जाते हैं, उद्विग्न हो उठते

हैं, उसमें उनका दुर्भाव हो जाता है। यही द्वेष है। जब मनुष्य इन्द्रियोंके इस राग और द्वेषको अपने ऊपर ले लेता है तो स्वयं भी उनके वशीभूत हो जाता है, अतः इन्हें परिपन्थी या लुटेरे समझकर इनसे सावधान रहे; इनके वशमें न आवे। विषयोंके प्रति राग हो या द्वेष, वह मनुष्यको पापके ही गर्तमें गिराता है। ये राग और द्वेष ही काम और क्रोधके जनक हैं। संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।' राग ही रजोगुण है—रजो रागात्मकं विद्धि। काम या क्रोध रजोगुणकी ही संतान है। काम-कोध ज्ञानीके नित्य वैरी—सहज शत्रु हैं। इनके द्वारा ज्ञानतक आवृत हो जाता है। ये इन्द्रिय, मन और बुद्धिमें डेरा जमाये हुए हैं और इन्हींकी सहायतासे ज्ञानको ढँककर देहाभिमानी जीवको मोहमें डाल देते हैं। अतः इन सहज शत्रुओंको ज्ञानकी तलवारसे टूक-टूक कर डालना चाहिए। ज्ञानका आवरक अज्ञान भी शत्रु है उसे भी ज्ञानके द्वारा ही नष्ट किया जाता है, जैसे प्रकाशके द्वारा अन्धकार को। अवस्था-विशेषमें आत्मा ही अपना शत्रु और मित्र हो जाता है। जिसने आत्म-शक्तिसे मन-बुद्धिपर नियन्त्रण पा लिया वह आत्मा स्वयं ही अपना बन्धु या मित्र है, किन्तु जो मन-बुद्धिको न जीतकर स्वयं उनके वशमें है; वह स्वयं ही अपना शत्रु है। काम, क्रोध तथा लोभ ये तीनों आत्मनाशक नरकद्वार हैं; तीनोंको ही शत्रु समझो। जिनसे इन तीनोंको जीत लिया उसने मानों तीनों लोकोंपर विजय पा ली। ये आत्माके आन्तरिक शत्रु हैं। आन्तरिक शत्रु बाह्य शत्रुसे भी अधिक भयंकर होते हैं। कुछ नीतिज्ञ इन तीनोंके साथ हर्ष, मद और मानको भी गिनकर इन आन्तरिक शत्रुओंकी संख्या छः मानते हैं। जो इन्हें जीत ले, वही त्रिभुवन विजयी वीर है। सम्पूर्ण जीवमात्रका सच्चा सुहृद् या सखा तो एक मात्र मैं हूँ। यह जानने मात्रसे परम शान्ति प्राप्त हो जाता है।

●

भगवच्छरणागतिसे परम गति

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

भगवान् कहते हैं—'मेरी शरणमें आकर जो पापयोनिके जीव हैं, वे तथा स्त्री, वैश्य और शूद्र भी परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं।'

●

तेरी कला

देखता हूँ, पर नहीं आकार है,
मूँदता हूँ, तो जगत् साकार है।
चाहता तो, तू छिपा रहता कहीं,
भूलता, तो छोड़ता पीछा नहीं।
अजब है तेरी कला-जादूगरी!
मैं न हूँ, तब दे रहा तू हाजिरी॥

—श्रीहरिभाऊ उपाध्याय

सम्पादकीय

गीताजयन्ती

★

महाभारत ग्रन्थके पूर्वापर प्रसंगका अनुशीलन करनेसे यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि कौरव-पाण्डव-युद्धका प्रारम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदाको हुआ था। अतः उसी दिन श्रीकृष्णार्जुन-संवादके रूपमें श्रीमद्भागवद्गीताका प्राकट्य हो गया था; परन्तु वह अभीतक उन आदि वक्ता तथा श्रोता तक ही सीमित थी। महाभारत युद्धके दसवें दिन सन्ध्याकालमें जब संग्राम समाप्त हुआ तो संजयने आकर धृतराष्ट्रको बताया कि 'आज भीष्म पितामह रणभूमिमें मार गिराये गये और अब वे शर-शय्यापर शयन करते हैं'। यह अप्रिय समाचार सुनकर धृतराष्ट्र रातभर उनके लिये विलाप-प्रलाप करते रहे। ग्यारहवें दिन उन्होंने कुरुक्षेत्रमें घटित हुए युद्धका पूरा-पूरा वृत्तान्त सुनानेके लिये संजयको आज्ञा दी। तब संजयने धृतराष्ट्रको ब्यौरेवार सब बातें बतायीं। उसीमें उन्होंने सेनाओंकी मोर्चेबंदी और शंखध्वनि आदिसे आरम्भ करके संपूर्ण गीता सुनायी। इस प्रकार सर्व-साधारणमें गीताकी अवतारणा एकादशीके दिनही हुई; इसलिये मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीको ही गीताजयन्ती मनायी जाती है। गीता भगवानकी वह अमृत वाणी है; जो जीवन-मरणके भयको दूर करके आत्माके शाश्वत अमरत्वका दृढ़ विश्वास उत्पन्न करती है। यह निराशकी आशा, निर्बलका बल तथा निराश्रयका आश्रय है। यह भीरुको वीर बनानेवाली तथा मरणासन्नमें भी नूतन प्राणशक्तिका संचार करनेवाली है। यह ओज, उत्साह, शौर्य तथा बल-विक्रमका भाव जगाकर जीवनव्यापी संघर्षमें श्री, विजय और भूतिकी प्राप्ति करानेवाली ध्रुवा नीति है। गीता अतीतमें ही नहीं, आज और भविष्यमें भी दिव्य प्रकाश देकर कर्तव्यका पथ प्रशस्त करनेमें पूर्णतः समर्थ है। हम गांधीजीकी भांति गीता-माताकी शरण लें। वह हमें सदा ही सही दिशाका दर्शन करायेगी।

प्रकृतिका प्रकोप

पाकिस्तानमें लाखों लोग समुद्री तूफानके शिकार होकर कालके गालमें चले गये। वे घर-बार हो गये। जो जीवित हैं, वे भी भूखमरीके मुखका ग्रास बनते जा रहे

हैं। समुद्रके निकटवर्ती उस अभिशप्त क्षेत्रमें चारों ओर शव-ही-शव दृष्टिगोचर होते हैं; यह हृदयविदारक समाचार पढ़कर किसका हृदय व्यथासे तड़प नहीं उठेगा। भगवान न करे, ऐसा दुर्दिन किसीको देखना पड़े। उस क्षेत्रके लोग समस्त विश्वकी दया, सहायता, सहानुभूति और समवेदनाके पात्र हो रहे हैं। पीड़ित मानवताकी सेवाका इससे उत्तम देश, काल और पात्र क्या होगा? प्रत्येक दाताको वहां की जनताकी सेवा और सहायतामें जी-जानसे जुट जाना और खुलेहाथों दान करना चाहिए। भगवानसे प्रार्थना है कि वे इस तूफानसे पीड़ित जनताको धैर्य और शक्ति दे तथा मृत व्यक्तियोंकी आत्माको शान्ति प्रदान करे।

डाक्टर रामन अब नहीं रहे

विश्वविश्रुत महान् वैज्ञानिक भारतीय विद्वान डाक्टर रामनका गत २७ नवम्बरको प्रातः ७। बजे बंगलोरमें परलोकवास हो गया—इस समाचारको समस्त विश्वकी जनताने बड़े दुःखसे सुना है। आपको हालमें ही हृद्रोगका दौरा उमड़ आया था, जिससे उनके ऐहलौकिक जीवनका अन्त हो गया। मृत्युकालमें आपकी अवस्था ८२ वर्ष की थी।

डाक्टर चन्द्रशेखर वेंकट रामनने अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियोंसे न केवल भारतका मस्तक ऊँचा किया था, समस्त विश्वके वैज्ञानिकोंको चकित और चमत्कृत करके नोबेल पुरस्कार पानेकी प्रतिष्ठा अर्जित की थी। समुद्रकी लहरोंपर पड़नेवाली सूर्यकिरणोंके प्रकाशको देखकर डाक्टर रामनने जो अद्भुत अनुसन्धान किया था, वह 'रामन प्रभाव' के नामसे संसारमें विख्यात तथा समादृत हुआ। वे स्वदेशके ही नहीं अखिल विश्वके गौरव थे। वे परम आस्तिक थे। उन्होंने एक बार वाराणसीमें गीताजयन्तीके अवसरपर बड़ा सुन्दर प्रवचन किया था। उनके निधनसे सम्पूर्ण वैज्ञानिक जगतकी अपूरणीय क्षति हुई है। हम भगवानसे उनकी आत्माकी शान्तिके लिए प्रार्थना करते हुए उनके सन्तप्त परिवारके साथ समवेदना प्रकट करते हैं।

●

सच्चा और ईमानदार बनें

मनुष्यको सच्चा और ईमानदार होना चाहिए। सत्यभाषण सर्वोत्तम तप है और मिथ्या-भाषण महान् पाप। जिसने अपने हृदयमें सत्यको स्थान दे रक्खा है; उसने मानस-मन्दिरमें परमात्माको प्रतिष्ठित किया है। झूठ, कपट, छल-छन्दके फंदेमें फँसकर मनुष्यको असह्य और असंख्य दुःख भोगने पड़ते हैं। बेईमानको सर्वत्र दुत्कार मिलती है और ईमानदारका इहलोक तथा परलोकमें भी सदा समादर होता है।

●

दो दिव्य उद्गार

श्री रामकिंकर उपाध्याय

(१)

विरद सँभारिये

भटक गए हैं सब साधनोंके कीस आज
तृषित हुए हैं दया बारि दे उबारिए,
पार कौन पावे अभिमानका अपार सिन्धु
सिंहिका सरोषिनीके बदन बिदारिए।
भ्रान्ति लङ्किनी प्रवेश द्वार पै अड़ी हुई है
महावीर ज्ञान - मुष्टिकासे उसे मारिए,
कौशलेश - किंकर ! विलोकिए कृपाकी कोर
नामके ही नाते नाथ बिरद सँभारिए॥

(२)

कितने समीप पर कितने दूर ?

अमित युगोंसे दृग प्यासे ढूँढते हैं तुम्हें
झलक दिखाके क्षणमें ही छिप जाते हो,
सघन अमामें जब राह सूझती है नहीं
मञ्जु मुसुकानसे प्रकाश बिखराते हो।
होता हूँ उदास जब कोई पास होता नहीं
पास ही कहींसे तुम प्रेम - गीत गाते हो,
कितने समीप पर हाय कितने हो दूर
हियसे लगे हो पर हाथमें न आते हो॥

गीताज्ञान-भगवान्को आत्मसमर्पण

श्रीकृष्णकिंकर

★

कुरुक्षेत्रके युद्धमें जब कौरव-पाण्डव सैनिक आमने-सामने डट गये, उभय पक्षकी सेनाओंमें युद्धारम्भ-सूचक शङ्ख-ध्वनि होने लगी, उस समय अर्जुनने अपने सारथिसे कहा—मेरा रथ दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा करो, जिससे मैं यह देख सकूँ कि कौन-कौन युद्धकी इच्छासे यहां खड़े हैं ? किनके साथ मुझे युद्ध करना होगा तथा दुर्बुद्धि दुर्योधनका प्रिय करनेकी इच्छासे युद्धके लिए कितने लोग यहाँ आये हैं ?

पार्थसारथीने रथीके आदेशका पालन किया और भीष्म एवं द्रोणके समक्ष, जहाँ समस्त कौरव एकत्र थे, रथ लाकर खड़ा कर दिया। पार्थने उभय-पक्षकी ओर जब दृष्टिपात किया तो उन्हें ताऊ, चाचा, पितामह, आचार्य, मामा, भाई, पुत्र, भतीजे, मित्र, श्वसुर और सुहृद खड़े दिखायी दिये। दोनों सेनाओंमें इसी श्रेणीके लोग थे। इन्हें देखते ही करुणा और विषादसे कुन्तीकुमारका हृदय भर आया। फिर क्रमशः उन भावोंके अनुभाव प्रकट होने लगे। अङ्ग-अङ्ग शिथिल होने लगा। मुंह सूख गया। देहमें कम्प होने लगा। रोंगटे खड़े हो गये। गाण्डीव हाथसे खिसकने लगा। त्वचामें दाह होने लगा। खड़ा रहना कठिन हो गया। मन विभ्रान्त हो उठा। विपरीत परिणामके सूचक अपशकुन होने लगे। 'ओह! सज्जनोंका वध! क्या इससे कल्याण होना सम्भव है ? नहीं चाहिए ऐसी विजय, नहीं चाहिए यह राज्य और सुख। क्या होगा राज्य और भोग लेकर ? इस तरहकी जिन्दगी किस कामकी ? जिनके लिए राज्य, भोग और सुख अपेक्षित हैं, वे तो धन और प्राणोंका मोह छोड़कर युद्धभूमिमें खड़े हैं। ये मुझे मारते हों तो भी मैं इनपर प्रहार करना नहीं चाहता! इनके बधसे धरतीकी तो बात ही क्या है तीन लोकोंका राज्य मिलता हो तो भी मैं उसे ठोकर मार दूंगा। ताऊजीके बेटे मेरे भाई-बन्धु ही तो हैं; इन्हें मारकर मुझे कौन-सा सुख मिलेगा। ये लोग लोभवश विवेक खो बैठे हैं तो क्या हुआ ? मैं तो होश हवास में हूँ, मैं यह कुलक्षय तथा मित्रद्रोहका पातक कैसे करूँ ? कुलधर्मका नाश, कुलवधुओंका दूषण, वर्णसंकरकी उत्पत्ति, कुलके लिए नरकका द्वार खुल जाना, पितरोंकी पिण्डोदक-क्रियाका लोप, उनका अधःपतन, जातिधर्म तथा सनातन

कुलधर्मका नाश और अनियत कालतक नरकमें निवास—भारी अनर्थकी परम्परा प्राप्त हो गयी ! ओह ! हमलोग महान पाप करनेपर उतारू हो गये हैं, जो राज्य-सुखके लोभसे स्वजनोंका वध करने जा रहे हैं। नहीं, यह नहीं होगा, धृतराष्ट्रके पुत्र मुझ निहत्थेपर शस्त्र चलाकर भले ही मेरा वध कर डालें, मैं इसका प्रतीकार नहीं करूँगा। मैं मर जाना ही कल्याणकारी समझूँगा।'

ऐसा कहकर पार्थने पुरुषार्थसे मुंह मोड़ लिया। वे धनुषवाण फेंककर रथके पिछले भागमें बैठ गये ! हृदयमें करुणाका सागर उमड़ रहा था और नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा झर रही थी।

मधुसूदन—दानवदर्पदलन श्रीकृष्ण अपने सखाको विषादमें डूबा देख आश्चर्यसे बोल उठे—अर्जुन ! इस विषम समयमें ऐसा व्यामोह तुम्हें कैसे प्राप्त हो गया ! यह तो अनार्यका काम है ! तुम तो आर्य हो ! क्या तुम्हारे इस निश्चयसे तुम्हें स्वर्ग मिलेगा या तुम्हारी कीर्तिमें चार चाँद लग जायँगे ? तुम जो एक ही साँसमें इतनी बातें सोच गये, बोल गये ! यह सब क्या है ? केवल क्लैब्य—कायरता अथवा नपुंसकता ! हृदयको ओछी दुर्बलता ! छोड़ो यह सब नाटक। तुम तो परन्तप—शत्रुतापन हो, व्यामोह छोड़कर युद्धके लिए खड़े हो जाओ।'

'प्रभो ! महानुभाव गुरुजनोंके वधसे, उनके रुधिरसे सने भोग भोगनेसे तो भीख माँगकर जीवननिर्वाह कर लेना अच्छा है !'

'साधुवाद ! तुमने बड़े पते की बात कही ! एक ओर अशोचनीयके लिए शोक ! दूसरी ओर प्रज्ञावाद—बुद्धिमता तथा विवेक की बातें। कैसा पूर्वापरविरोध है ! विद्वान् लोग किसीके मरने जीनेकी बातको लेकर शोक नही करते हैं। देहधारीके शरीरमें जैसे क्रमशः कौमार, यौवन और जरा अवस्था आती है, उसी तरह एक देहको छोड़कर दूसरे शरीरकी प्राप्ति भी क्रम-प्राप्त है। इसे कौन टाल सकता है ? बालक जवान हो गया तो क्या वह मर गया ? बूढ़ा हो गया तो क्या उसकी मृत्यु हो गयी ? नहीं, इसी तरह देह-त्याग और देहान्तर-प्राप्ति भी मृत्यु नहीं है, अतः धीर पुरुष इनके लिए शोक नहीं करते हैं।

'फिर भी संयोग-वियोगसे सुख-दुःख तो होते ही हैं।'

सुख-दुःख तो अनुकूल-प्रतिकूल विषयोंके स्पर्श मात्रसे होते हैं; परन्तु वे टिकनेवाले नहीं हैं, आते और जाते रहते हैं। बादलोंकी घटा आई और बरसकर चली गयी। आकाश पुनः ज्योंका-त्यों। क्या इसके लिए कोई रोता या घबराता है। इस अनित्य दुःख-सुख तो चुपचाप सहन करनेकी आवश्यकता है।

'तो क्या मृत्यु केवल कल्पना है ?'

अवश्य ! व्यथा-वेदनाकी अनुभूति ही मृत्यु है, जिसे विषयोंके संयोग-वियोग व्यथा नहीं पहुँचाते, जिसके लिए सुख और दुःख समान हो जाते हैं; वही अमरत्वको प्राप्त होता है।

अमृत तो वह है ही, उस अमरत्वका अनुभव भी उसे होने लगता है। याद रक्खो, जो सत् है, उसका अभाव नहीं, जो असत् है, उसका कभी भाव नहीं है?'

तो फिर अविनाशी तत्त्व क्या है?'

जो सर्वत्र व्यापक हैं, वही अविनाशी है, उसीको हम आत्मा या परमात्मा कहते हैं; उसका नाश कोई कर नहीं सकता है। बड़ा-से-बड़ा योद्धा भी अविनाशीका नाश नहीं कर सकता।

'तो युद्धमें नाश किसका होता है?'

नाशवान्का ही नाश होता है। नाशवान् है देह—पाञ्चभौतिक पदार्थ। नित्य है देहधारी आत्मा। देह नष्ट होंगे ही, युद्धमें हों या अन्यत्र। आत्माका कोई बाल बाँका नहीं कर सकता।' जो आत्माको हन्ता या हत मानते हैं, वे मूर्ख हैं; आत्मा न किसीको मारता है और न किसीसे मारा जाता है—'नायं हन्ति न हन्यते।' आत्मा जन्म, मरण, प्रादुर्भाव आदिसे परे है। नित्य, सनातन, पुरातन एवं अजन्मा है। इस नाशवान् शरीरमें रहकर भी मारा नहीं जाता है—'न हन्यते हन्यमाने शरीरे।' क्या कोई घड़ेको फोड़ दे तो उसके साथ आकाश भी फूटता है? तुम युद्धमें कुछ आकृतियोंको नष्ट करनेमें आत्माके विनाशकी कल्पना करते और व्यर्थका पाप सिरपर लादते हो! अरे भाई! जैसे पुराने वस्त्र उतारकर मनुष्य नये वस्त्र धारण करता हैं, उसी तरह पुराने शरीरको छोड़कर जीवात्मा दूसरा शरीर ग्रहण करता है। इसमें मरने-मारनेकी कल्पना कैसी?'

'आत्माका क्या स्वरूप है?'

आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अशोष्य, नित्य, सर्वगत, स्थिर, अचल, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य, और अविकार्य है।'

'जन्म-मरण की परम्परा को अविछिन्न क्यों न माना जाय?'

'यदि ऐसा भी मान लो तो जो जन्म लेगा, वह मरेगा ही; और जो मरेगा, वह फिर जन्म लेगा ही। यह अपरिहार्य बात है। फिर इसके लिये शोक क्या करना है? वास्तविक बात तो यही है कि जीवात्मा नित्य अवध्य है—देही नित्यमवध्योऽयम्।

'यह ठीक है तो भी स्वजनों और गुरुजनों को मारनेसे अधर्म तो होगा ही।'

'स्वधर्मके विचार से भी तुम्हें युद्ध जनित हिंसा से कम्पित होने की आवश्यकता नहीं है। न्याय-प्राप्त युद्ध, यही क्षत्रियके लिये परम धर्म है, इससे बढ़ कर कल्याणकी बात उसके लिये दूसरी कोई नहीं है।' अकस्मात् स्वर्गका द्वार खुल गया है। ऐसा युद्ध सुखी क्षत्रिय ही प्राप्त करते हैं।'

'यदि युद्ध न किया जाय तो क्या हानि है?'

'यदि इस धर्मप्राप्त संग्रामसे तुम मुँह मोड़ लोगे तो स्वधर्म और कीर्ति दोनोंसे भ्रष्ट होकर केवल पापके भागी बनोगे। तुम्हारे लिये युद्ध करना परम धर्म

और इससे पीछे हटना महान् पाप है। क्या तुम समझते हो, युद्ध छोड़नेसे लोग तुम्हें धर्मात्मा कहेंगे और यश देंगे ? अजी राम-राम कहो । युद्धसे मुँह मोड़ते ही लोग तुम्हें कायर, डरपोक और युद्धमें पीठ दिखानेवाला कहकर तुम्हारे अपयशकाविस्तार करेंगे और एक संभावित पुरुषके लिये अयश-अपकीर्ति मृत्युसे अधिक दुखदायिनी होगी । शत्रु तुम्हें गालियाँ देंगे तुम्हारे सामर्थ्य की निन्दा करेंगे । इससे बढ़कर दुःख और क्या होगा ? सुख-दुख, लाभ-हानि, जय-पराजय सबको एक-सामान कर कर्तव्य-बुद्धिसे युद्धमें जुट जाओ । ऐसा करोगे तो तुम्हें पाप नहीं लगेगा । योगस्थ होकर कर्म करो । आसक्ति त्याग कर सिद्धि-असिद्धिमें समभाव रखना ही योग है । योग ही कर्म-कौशल है । इससे पाप-पुण्यका बन्धन दूर हो जाता है । बुद्धि स्थिर होती है; निष्कामता और निरहंकारता के साथ परम शान्ति मिल जाती है ।'

अर्जुनने और भी शङ्का-समाधान करके अपने आपको स्थिर किया और 'करिष्ये वचनं तव' कहकर श्रीकृष्णके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया । भगवान्ने शरणागत भक्तके जीवनरथकी बागडोर संभाली । वह सर्वथा कृतकृत्य हो गया ।

यह मानवमात्रके लिये शुभ संदेश है—भगवान्की शरणमें रह कर कर्तव्यका पालन । इससे सबका परम मंगल होगा ।

●

तृष्णाको त्याग देना चाहिए

मनुष्यके जराजीर्ण होनेपर दाँत गल जाते हैं, बाल पक जाते हैं, झड़ने लगते हैं, सारी इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है; किन्तु उसकी तृष्णा नित्य नूतन तरुणी होती जाती है । उसके जालमें फँसकर मनुष्य न जाने कितने अपकर्म कर बैठता है । राजा यतातिका अनुभय है—'भोगोंको भोगनेसे उनकी कामना नहीं मिटती, अपितु जैसे आगमें घी पड़नेसे वह और प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार भोग भोगनेसे भोगेच्छा और बढ़ती है; अतः तृष्णाको त्याग देना चाहिए ।'

●

अध्यायमें प्रतिपाद्य तत्त्वकी समीक्षा

गीताका बारहवाँ अध्याय

स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती

★

भगवान्ने गीताके ग्यारहवें अध्यायके अन्तिम श्लोकमें भक्तिका सूत्र बतलाया है। बारहवें अध्यायमें इसी सूत्रकी व्याख्या है। इस श्लोकमें पाँच बातें कही गयी हैं। उनमेंसे तीन भगवान्के सम्बन्धमें हैं:—१. 'मत्कर्मकृत्' २. 'मत्परमः' ३. 'मद्भक्तः' और दो बातें संसारके सम्बन्धमें हैं १. 'सङ्गवर्जितः' तथा २. 'निर्वैरः सर्वभूतेषु'।

भगवान्ने यहाँ इस श्लोकमें बताया कि उनकी प्राप्तिका कौन अधिकारी है, कौन उनके धाममें जा सकता है, कैसे व्यक्तिको भगवत्-प्राप्ति होती है?

१. 'मत्कर्मकृत्' अर्थात् 'मदर्थंकर्मकृत'–भगवान्के लिए काम काम करनेवाला। देखना यह है कि मनुष्य किसके लिए कर्म करता है? पुत्रके लिए? स्त्रीके लिए? धनके लिए? अथवा अपने शरीरको सुख देनेके लिए? कर्म होता है शरीर, मन तथा इन्द्रियोंके संयोगसे। ऐसा कर्म करनेवाले संसारी लोग हैं। भक्त कर्म करता है भगवान्के लिए। मकानमें झाड़ू देना है तो वह भी भगवान्के लिए। सभी रूपोंमें भगवान् ही हैं। वे किसी रूपमें यहाँ आयें तो उनके चरणोंमें काँटा-कंकड़ अथवा धूलि न लगे, उन्हें अस्वच्छ स्थान प्राप्त न हो, इसलिए वह झाड़ू लगाता है। यह निष्काम कर्मयोग हुआ।

२. 'मत्परमः' दूसरी बात यह है कि आप श्रेष्ठ किसे मानते हैं और आपका भरोसा किसपर है? विश्वास-भरोसा ईश्वरपर होना चाहिए और उसीको सर्वश्रेष्ठ तत्त्व समझना चाहिए। धन हो या स्त्री, आप उसपर निर्भर नहीं रह सकते। उसे आप सर्वश्रेष्ठ मान नहीं सकते। रोग आनेपर आप धनको शरीर-रक्षाके लिए, कष्ट-निवारणके लिए लुटा देते हैं। स्त्री-पुत्र आदि सबको मनुष्य, प्राणसंकटमें पड़नेपर छोड़कर भागता है। अतः आप देखें कि आपने जीवनमें सबसे बड़ी वस्तु किसे माना है? प्रार्थना क्या है? प्रकृष्ट वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छा करना। भक्त वह है, जो भगवान्को ही सबसे श्रेष्ठ मानता है। भगवान्पर ही भरोसा करता है। इस प्रकार यह शरणागतिका निरूपण हुआ।

३. 'मद्भक्तः' आप प्रेम कहाँ, किससे करते हैं? भक्त केवल भगवान्से प्रेम करता है। जिसका स्त्री-पुत्र, धन-यश तथा देहमें प्रेम है, वह संसारी है।

---

१. मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११।५५)

यहाँ तककी ये तीनों बातें भगवान्‌के सम्बन्धमें कही गयीं हैं। अब आगेकी दो बातें संसारके सम्बन्धमें हैं।

४. 'संगवर्जितः' आसक्ति कहीं मत करो। संसारके किसी पदार्थ या प्राणीमें राग करोगे तो फँसोगे।

५. 'निर्वैरः सर्वभूतेषु' सम्पूर्ण प्राणियोंसे वैरहीन रहो। एक वृक्ष होता है, जिसका फल बेर (बदरीफल) है। इस वृक्षकी लकड़ीकी अग्नि दूसरी सब लकड़ियोंसे अधिक ताप देती है। अतः बहुत शीत लगनेपर लोग बेरकी लकड़ी जलाकर ठंड दूर करते हैं। शीत-निवारणके लिए बाहर बेरकी (बेरकाष्ठकी) अग्नि भले जला लो; किन्तु हृदयमें बेरकी अग्नि जलाओगे तो हृदय जलेगा। अतः राग और द्वेष दोनों यहाँ मत करो।

यह संसार मायिक है। मायिक अर्थात् मायाका। मायिक = माइ–का = पितृगृह जैसे किसी लड़कीका मायका (पीहर-पितृगृह) होता है। लड़की भले पिताके घर आये, किन्तु उसका वास्तविक घर तो पतिका घर है। इसी प्रकार जीवका वास्तविक घर–अपना स्थान परमात्मा है। अतः वहीं हमें जाना है, यह दृढ़ निश्चय रक्खो।

उस अपने घरमें कौनसे वस्त्र पहिनकर जाना है ? सन्तोंने प्रायः साड़ीकी चर्चा अपनी वाणियोंमें की है। बात यह है कि अन्तःकरणकी वृत्ति स्त्रीभावापन्न है। कोई ज्ञानी हो या योगी, मूर्ख हो या विद्वान्, अन्तःकरणकी वृत्ति तो सबकी ही स्त्रीभावापन्न है। जैसे लता वृक्षके आश्रित रहती है, जैसे स्त्री पतिके आश्रित रहती है, वैसे ही वृत्ति आत्माश्रित रहती है। अतः यह वृत्ति कौन-सा वस्त्र कौन-सी साड़ी पहिनकर उस अपने परम पुरुषके यहाँ जाय ? यही बात इस श्लोकमें बतायी गयी है। चित्तमें प्रीति होनी चाहिए, यह बात 'मद्भक्तः' के द्वारा कही गयी। मनमें भगवान्‌का विश्वास तथा बुद्धिमें भगवान् ही सर्वोत्कृष्ट हैं, यह निश्चय होना चाहिए, यह बात 'मत्परमः' से बतायी गयी और शरीरसे भगवान्‌के लिए कर्म हों, यह 'मत्कर्मकृत्' से सूचित किया गया है। भक्तिके इसी सूत्रकी व्याख्या बारहवें अध्यायमें है।

भक्तिशास्त्रमें बारहकी संख्याका बहुत महत्त्व है। द्वादशीको हरिवासर कहते हैं। वैष्णवजन एकादशीका व्रत द्वादशीकी प्रधानतासे ही करते हैं। द्वादशाक्षर मन्त्र है और भागवत-में द्वादश स्कन्ध हैं। नारायणका आदित्य स्वरूप द्वादशात्मा है और उसमें भी बारहवें आदित्य वामन हैं। भगवान् पहिले वामन रूपमें ही अदितिके यहाँ प्रकट होते हैं। दैत्यराज बलिसे तीन पद भूमि लेनेके पश्चात् वे त्रिविक्रम हो जाते हैं और बलिको रसातल भेजकर फिर त्रिविक्रम रूप त्याग देते हैं। इस कथाका साधकके जीवनमें भी एक तात्पर्य है। भगवान् आपके चित्तमें पहिले वामन रूपमें छोटे-से होकर ही आते हैं। वे पहिले बोलते-चलते, हँसते-खेलते, खाते-पीते नहीं है। आप अपने प्रेमसे, अपनी भावनासे उन्हें बोलता-चलता, हँसता-खेलता, खाता-पीता बनाइये। फिर वे त्रिविक्रम हो जायँगे। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति-इन तीनों अवस्थाओंको व्याप्त कर लेंगे। सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंको क्रान्तकर लेंगे। फिर इस त्रिविक्रम रूपका भी त्याग करके वे तुरीय स्वरूपमें ही शेष रहेंगे।

इस प्रकार भक्तिशास्त्रमें जो द्वादश संख्याका महत्त्व है, उसीकी परम्परामें गीताके बारहवें अध्यायको ही 'भक्तियोग' का निरूपण करनेके लिए उपयुक्त चुना गया।

ग्यारहवें अध्यायमें भगवान्‌के तीनों रूपोंका वर्णन है। पहिला विराट् रूप जो भगवान्‌ने अर्जुनको दिखलाया। यह रूप प्रत्यक्ष नहीं था। अर्जुनको दिव्य दृष्टि प्रदान करके भगवान्‌ने अपने इस रूपका दर्शन कराया—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥ ११।८

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारिकामें प्रायः चतुर्भुज रूपसे ही रहते थे। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके रुक्मिणी-परिहासमें यह बात आयी है कि जब रुक्मिणीजी मूर्च्छित हो गयीं तो उन्हें चतुर्भुज भगवान्‌ने उठाया 'तामुत्थाप्य चतुर्भुजः'। पौन्ड्रक वासुदेव (मिथ्या वासुदेव) श्रीकृष्णकी नकल करके दो कृत्रिम भुजायें लगाये रहता था। यदि श्रीकृष्ण चतुर्भुज न रहते तो उसे ऐसा नहीं करना पड़ता। उसके साथ युद्धमें भी श्रीकृष्णके चतुर्भुज रूपका वर्णन है। महाभारतमें अर्जुनके रथपर भगवान् चतुर्भुज रूपमें ही सारथिके स्थानपर बैठते थे। इसीलिए गीताके ग्यारहवें अध्यायमें स्तुति करते हुए अर्जुन कहता है—

'तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते। ११।४६

अर्थात् 'हे सहस्रबाहु, विश्वमूर्ति! आप जैसे पहिले चतुर्भुजी रूपसे मेरे रथपर विराजमान थे, वैसे उसी चतुर्भुज रूपमें फिर हो जाइये।' अतः चतुर्भुज रूप अर्जुनके लिए सदा प्रत्यक्ष था। विराट् रूपको देखकर अर्जुन अत्यन्त विह्वल हो गया। इसलिए उसको धैर्य देनेके लिए करुणापरवश श्रीकृष्णने अपना द्विभुज रूप प्रकट किया। ग्यारहवें अध्यायमें वर्णित इन तीन सगुण रूपोंमेंसे किस रूपकी उपासनाकी बात गीताके बारहवें अध्यायमें है, यह प्रश्न टीकाकारोंने उठाया है। इस कारण गीताके बारहवें अध्यायकी अर्थसंगति तीन प्रकारसे टीकाकारोंने की है।

श्रीशंकराचार्य आदि प्राचीन टीकाकार मानते हैं कि बारहवें अध्यायमें भगवान्‌के विराट् रूपकी—सम्पूर्ण विश्वात्मक रूपकी भक्तिका निरूपण है। क्योंकि भगवान्‌ने अर्जुनको 'दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्' कहकर दिव्यदृष्टि-दान करके इसी रूपका दर्शन कराया।

कुछ अन्य टीकाकारोंका—श्रीरामानुजाचार्यादिका मत है कि इस अध्यायमें भगवान्‌के चतुर्भुज नारायणरूपकी भक्तिका प्रतिपादन है। विराट्‌रूप देखकर तो अर्जुन भयसे विह्वल हो गया था। अतः विराट्‌रूपकी भक्ति उसे क्यों समझायी जायगी। अर्जुनने स्वयं—'तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते' यह प्रार्थना की। अतः भक्तकी प्रार्थनापर जिस रूपका आविर्भाव हुआ, उस रूपको उपासनाका आगेके अध्यायमें प्रतिपादन है।

कुछ श्रीकृष्णभक्त टीकाकारोंका मत उक्त दोनों मतोंसे भिन्न है। वे कहते है कि स्वयं अनुग्रह करके अर्जुनको सम्पूर्ण रूपसे आश्वस्त करनेके लिए भगवान्‌के जिस द्विभुज मानुषरूपका प्राकट्य हुआ, बारहवें अध्यायमें उसकी ही उपासनाका प्रतिपादन किया गया है।

आराधना श्रीरामकी

वन्दित अनन्दित चेतना
श्रीकृष्ण जीवन - धामको ।
मैंने सुमुकुलित लोचनोसे—
आरती की रामकी ॥

माधव सनातन मुक्तिमें
सौरभ सुवासित साधना ।
सुन्दर सरस सुकुमार स्वर
सुखकर लिए आराधना ॥

कमनीय कोमल कामिनी
कर कल्पना ले यामिनी ।
मृदु वद्ध अंजलिमें सुमन
रख कर सुखद सुर - भामिनी ॥

कर शीश नत श्रद्धा सजा
निज लोचनोंकी कोरमें ।
भर भक्ति आंचलमें सरस
मन साधकर चित - चोरमें ॥

बोली करो स्वीकार अब
नित सत्यके अनुरागमें ।
अनुपम अलभ, अरुणिम सुलभ
श्रीके सनातन भागमें ॥

प्रभुके विरल विश्वासकी
गाथा निमीलित आसकी ।
ले साधना अभिरामकी
आराधना श्रीरामकी ॥

डा० श्री शिवकुमार शर्मा, एम. ए.

हिन्दू धर्मकी गीतोक्त व्याख्या

श्रीसीकर जी

★

यह बताइये कि गीता, धर्मके विस्तारके बारेमें क्या कहती है? न्याय और राज्य सम्बन्धी विषय उसके अन्तर्गत रह सकते हैं कि नहीं? आधुनिक विचारके अनुसार धर्म मानवका एक व्यक्तिगत विषय है। राज्यका इसलिए कर्त्तव्य समझा जाता है वह सदा सतर्क रहे कि धर्मसम्बन्धी विषयोंमें उसका हस्तक्षेप न हो। हिन्दू धर्म क्या है! न तो उसका एक कोई धर्मग्रंथ ही है और न ही धर्म, कर्म तथा नैतिक सिद्धान्तोंका कोई एक निश्चित समूह है, अतः यदि उसको धर्म कहा है तो किसी अन्य दृष्टिसे ही ऐसा अर्थ माना गया होगा जो कि इस्लाम तथा क्रिश्चियेनिटीसे भिन्न है। केवल इस्लाम ही संसारमें ऐसा धर्म है जिसमें आज-तक कभी किसी प्रकारकी ऊर्ध्व गतिकी हलचल नहीं हुई। क्या इसका कारण उसमें व्यवस्थित उसकी स्थिरता अथवा अटलता है?'

गीताके नवें अध्यायके आरंभमें भगवान्‌ने कहा है कि यह विद्या श्रेष्ठ राजाओंका राज्य-शासन चलानेके लिए और मनुष्यमात्रको श्रेष्ठ एवं पवित्र करनेके लिए गुह्य ज्ञान है। प्रत्येक व्यक्ति इसका प्रत्यक्ष अनुभव करके राज्य-कार्यमें कुशलता प्राप्त कर सकता है, जिससे कभी दुर्दशा नहीं होती।

श्रेष्ठ शासनमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चांडाल पापयोनि, पंडित आदि सभी को समान दृष्टिसे देखा जाता है (५।१८) अर्थात् भगवद्गीताके अनुसार राज्य-शासन जन्म या वर्णके कारण किसीके साथ पक्षपात नहीं करता।

इसमें सब व्यक्ति कर्मफल-त्याग करेंगे। ब्राह्मण विद्या पढ़ाकर और प्रजाजनोंको ज्ञानविज्ञानसंपन्न बनाकर अपने कर्म-फलका समर्पण प्रजापतिको करेगा। क्षत्रिय राज्यका पालन करके, दुष्टोंको दण्ड दे कर और सत्यकी रक्षाके लिए असत्य के साथ युद्धादि करके अपने कर्मफलोंको अपने उपभोगके लिए न रखकर प्रजापतिको समर्पण करेगा। इसी प्रकार वैश्य, शूद्र, निषाद और अन्यान्य व्यक्ति भी कर सकते हैं। (९।२७)।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषादादि सब अपने-अपने (सहज—जन्मसे प्राप्त) कर्म अत्यन्त कुशलतापूर्वक करके उन्नति प्राप्त करेंगे। (२।४८,५०) सिद्धि या असिद्धिकी चिन्ता

न करके कर्त्तव्य कर्म करना धर्म है—ऐसा मानकर प्रत्येक अपना दायित्व निभावे (२।४८, १८।२६), सब अपने कर्मफल प्रजापतिके अर्पण करेंगे (४।६४) प्रत्येक मनुष्य समझेगा कि वह अपने कर्मद्वारा परमेश्वरकी सेवा कर रहा है (१८।४६)। वैद्य रोगीकी चिकित्सा परमेश्वर-रूपमें करेगा। अध्यापक शिष्यको इसी भावसे सिखावेगा। स्त्री समझेगी कि 'मैं अपने स्त्रीत्वसे पतिरूप परमेश्वरकी सेवा करूंगी और पति कहेगा कि स्त्रीरूपमें साथी बनकर परमेश्वर ही मेरे सामने आया है, अतः अपने पति-धर्मद्वारा उसकी सेवा करना मेरा धर्म है। इस प्रकार कर्त्तव्य कर्म करना परमेश्वरकी सेवा है।

अपने कर्ममें नित्य दत्तचित्त ऐसे कर्मनिष्ठोंका योग-क्षेम प्रजापतिद्वारा ही होगा (९।२२)। राजाके प्रवन्धद्वारा सबकी आवश्यकता की पूर्ति होगी निर्लोभ वृत्तिसे रहने तथा भोगोंका त्याग करनेसे झगड़े भी कम होंगे और सब आनन्दमें रह सकेंगे। भगवद्गीतोक्त राज्य-प्रवन्धकी विद्याके असार चलाये गये राज्यमें इस प्रकार लोकव्यवहार होगा।

मनुष्य अल्प शक्ति वाला हो अथवा शक्तिशाली सबको अपनी शक्ति स्वराज्य-हितमें लगा देनी चाहिए। इसमें प्रत्येक प्रकारकी शक्ति वांछनीय है। इस विधिसे अपनेको स्वराज्यके लिए पूर्णतया समर्पण करनेवाले लोग सब फल राष्ट्रके समर्पित करते हैं। जिससे उन्हें शुभाशुभ कर्मोका दोप नहीं लगता (९।२८) राष्ट्र-हितके कार्य में ही मन लगाकर, उसकी सेवा करके उसके हितके सम्मुख नम्र होकर भेदरहित सर्वस्व लगाकर यदि मनुष्य राष्ट्र-कार्य करेंगे तो निसन्देह उसका नव निर्माण करनेमें सफल हो सकेंगे। (९।१४) राष्ट्र-हितके लिए आत्मार्पण करनेवालेको राज्य शक्ति प्राप्त होती है—देशके श्रेष्ठ पुरुप वड़े-वड़े त्यागी इसके उदाहरण हैं।

गीता माताके सदाचार और न्याय-सम्वन्धी उपदेशोंपर अव ध्यान दिया जाय। भयका अभाव, अन्तःकरणकी स्वच्छता, तत्त्वज्ञान और उसके अनुसार निरन्तर आचरणकी स्थिति सात्त्विक दान, (भूखेको अन्न और प्यासेको पानी नंगेको वस्त्र देओ तुम दानी), इन्द्रिय-दमन वर्णादि-धर्म (लोकसंग्रहके लिए त्यागभावसे उत्तम कर्मोका करना) शास्त्रों अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोंके अनुभवोंका संग्रह, पठन पाठन, स्वधर्म पालनमें कष्ट-सहन एवं शरीर और इन्द्रियों सहित अन्तःकरणकी सरलता तथा मन वाणी और शरीरसे किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भापण, अक्रोध, कर्ममें कर्त्तापनके अभिमानका त्याग, चित्तकी चंचलताका अभाव, किसीकी निन्दा न करना, सब भूत प्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विपयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना, कोमलता, शास्त्रके विरुद्ध आचरणमें लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज, क्षमा धैर्य, वाहर भीतरकी शुद्धि, किसीसे शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव (१६।१ से ३), दम्भाचरणका अभाव, श्रद्धा-भक्ति-सहित माता-पिता और गुरुकी सेवा, अन्तःकरणकी स्थिरता, जन्म मृत्यु जरा और रोग आदिमें दुख दोपोंके कारणका वारम्वार विचार करना, गृह-धनादिमें लिप्त न रहना, प्रिय अप्रियकी प्राप्तिमें उन्मत्तता अथवा शोकादि विकारोंका न होना, जगत्-कर्त्तामें भक्ति, एकान्त और

शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव (१३।७ से ११) निन्दा स्तुतिको समान समझना (अर्थात उसके कारण अपने कर्तव्य कर्मसे विचलित न होना) जैसे भी शरीरका निर्वाह हो सदा संतुष्ट रहना (१२।१९)

सर्वव्यापी मानव-धर्मके नियमोंका यह विस्तार है। जिस व्यक्ति, समाज द्वारा देशमें उनका जितना पालन होगा, उतना ही वह कल्याणका भागी होगा।

भेदभाव ही सब उपद्रवकी जड़ है। इसीसे परस्परके वैमनस्यकी उत्पत्ति है। ऐसे ज्ञानको गीतामें राजस कहा है (१८।२१)। पृथक्‌तासे उत्पन्न संघर्षसे देश व समाजको बचाना राज्यके लिए अनिवार्य है कि ऐसे धर्मोंके संकुचित अंगोंका राज्य-सम्बन्धी विषयोंमें प्रयोग न हो केवल सर्वव्यापी नियम ही सत्य मानव-धर्म कहलाने योग्य हैं।

'हिन्दू धर्म क्या है—'ॐतत्सत् मंत्र' हिन्दू धर्मकी आधारशिला है (१७।२३) ॐसे तात्पर्य है। कि हाँ परमेश्वर अवश्य है—इसमें अटल विश्वास, सत्‌से यह कि कुछ उसीसे और उसीका इस संसारमें है, सत्‌से सत्य, शुभ, नित्यता, अव्ययता, निर्विकारता इस सिद्धांतके आधारपर सृष्टिके आदि कालमें ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञादि रचे गये। सर्व शक्तिमान् सच्चिदान्दघन परमात्मा अज, अविनाशी और सर्व भूतोंकी परमगति तथा परम आश्रय हैं। वे केवल धर्मकी स्थापना करने और संसारका उद्धार करनेके लिए ही अपनी योग-मायासे सगुण रूप धारणकर प्रगट होते हैं। अतः परमेश्वरके समान सुहृद्‌ प्रेमी और पतितपावन दूसरा कोई नहीं—ऐसा समझकर यदि मनुष्य परमेश्वरका अनन्य प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ अपने कर्त्तव्य कर्मोंको निष्काम भावसे संसारमें करता रहे तो वह राग, भय और क्रोधसे रहित, ज्ञान रूप तपसे पवित्र होकर पमेश्वरके स्वरूपको प्राप्त हो जाता है (४।९)।

परमेश्वरका सत्य स्वरूप क्या है। भगवद्‌गीतामें विस्तारसे कहे हुए इस स्वरूपको एक लेखमें प्रगट किया गया है। उसके मननसे योगीश्वरोंकी अनुभूतियोंका ज्ञान प्राप्त होता है। मूर्तिमान स्वरूपका चिन्तन भावनाका अवलम्ब है। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी' मनुष्य ही अपने भगवानको स्वरूप देता है। अपने मनोयोग द्वारा सुख, शान्ति, तुष्टि और पुष्टिके लिये प्राप्त निमित्त, जैसे एक देशभक्त देश-रक्षा-हेतु सर्वस्व न्योछावर करनेको झंडेसे शक्ति प्राप्त करता है।

जिस परमात्माके अन्तर्गत सब भूत हैं और जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे यह सब जगत् परिपूर्ण है वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्तिसे प्राप्त होने योग्य है (८।२२, ११।५४, १४।२६) अनन्य भक्तिका आशय यह है कि भगवानसे अन्य किसी दूसरेके आश्रयमें न रहकर आचरण करना। परमेश्वर सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा है। (१०।२०) वह यथार्थ सम्मति देनेवाला है (१३।२२) जो अपने अन्तःकरणमें स्थित परमात्माकी प्रेरणाके अनुसार वर्तकर कोई विरुद्ध आचरण नहीं करता वह सब विकारोंसे मुक्त हो ऐसी स्थितिमें पहुँचता है कि उसको यह प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है कि मैं ही ब्रह्म हूँ—अमीत अव्यय, नित्य धर्म और अखण्ड एकरस आनन्दका मैं ही आश्रय हूँ। (१४।२७)।

मनुष्यके शरीर देहमें आत्मा परमेश्वरका ही सनातन अंश है (१५।७)। शरीरके नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता–(२।२०) प्रकृतिमें ही स्थित पुरुष (जीवात्मा) प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका ही उसके अच्छी बुरी योनियोंमें जन्मका कारण बन जाता है (१३।२१) यह पुनर्जन्मका सिद्धान्त हिन्दू धर्मकी विशेषता है। कर्म विपाक इसीके अन्तर्गत है। मनुष्यमें गुण-वैचित्र्यके हेतु उसके पूर्व जन्मोंके संस्कार होते हैं। मनुष्योंमें ऊँच-नीच, राजा रंक, स्वस्थ रोगी, पुण्यात्मा पापी, दानी कृपण, दयावान् हिंसक इत्यादिकी भिन्नतायें इन्हीं संस्कारोंके कारण होती है।

जगत्-कर्ताने विवेक-बुद्धिकी विशेषता प्राणीमात्रमें केवल मनुष्यको ही प्रदान की है। इसके आश्रयसे वह आत्मोन्नति करनेमें स्वतन्त्र है। यद्यपि पूर्व संस्कारोंके अधीन उसको रहना ही पड़ता है।

अन्तर्यामी परमात्मा द्वारा यह विवेक-बुद्धि प्रकाशमें आती है। जो जितना इस अनुमन्ताका अनुसरण करता है वह उतनी ही आत्मोन्नतिको प्राप्त होता है। (१२।८) में भगवान्ने यही कहा है कि 'अत ऊर्ध्वं' अपनी वर्तमान स्थितिसे ऊपर उठता हुआ अन्तमें निर्विकार स्वरूपको प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं। हिन्दू धर्ममें इसीको परमगति कहा है। 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्त्वमसि' महावाक्य इसीका निश्चय दिलाते हैं।

हिन्दूधर्मकी नींव 'सर्वभूतात्मैकत्वका' भाव है। परम सिद्धिको प्राप्त हुए महात्मा जन सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मस्वरूप परमात्मामें स्थित होकर जगत्में प्रणीमात्रको अपनी सदृशतासे सम देखते हैं और सुख अथवा दुखको सबमें देखते हुए ऐसे योगी ही परम श्रेष्ठ हैं। मनुष्य अपने हाथ-पैर गुदादिके साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और म्लेच्छादिकोंका-सा वर्ताव करता हुआ भी उसमें आत्मभाव अर्थात् अपनापन समान होनेसे सुख और दुःखको समान देखता है। (६।३२) इसी प्रकार सिद्ध पुरुषोंकी 'वासुदेवः सर्वमिति' (७।१९) दृष्टि हो जाती है। यह निर्विवाद सत्य है कि जगद् व्यवहारमें पवित्रताके लिए यह वृत्ति परमोपयोगिनी है।

•

भवसागरसे शीघ्र पार होनेका उपाय

भगवान् कहते हैं—जो मुझमें सदा चित्त लगाये रहते हैं, निरन्तर अनन्यभावसे मेरा ही चिन्तन-स्मरण करते रहते हैं; उन्हें मैं शीघ्र ही अनन्य-भक्तिकी सुदृढ़ नौकापर बिठाकर स्वयं कर्णधार या नाविक बनकर मृत्यु-संसार-सागरसे पार कर देता हूँ।

(गीता)

ईश्वरका भव्य माहात्म्य

गीता मेरी दृष्टिमें

पं० श्रीदेवदत्त शास्त्री

★

श्रीभगवद्‌गीताका अध्ययन करने और उसके कण्ठस्थ करनेकी प्रेरणा मुझे लगभग ३१ वर्ष पूर्व गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा संचालित गीता-परीक्षा-समितिसे मिली थी। किशोर-वय में पढ़ी हुई, रटी हुई गीता उत्तरोत्तर अध्ययन, चिन्तनके आयाम प्रस्तुत करने और संघर्षशील जीवनको साहस एवं धैर्य प्रदान करनेमें निश्चय ही सार्थक सिद्ध हुई—हो रही है, किन्तु गीताका वास्तविक मर्म, उसमें निहित तत्त्वकी उपलब्धि मैं अब तक न प्राप्त कर सका।

वयःप्राप्त होनेपर मैंने गीताको एकतत्त्वीय महाकाव्यके चरमोत्कर्षके रूपमें समझा। उस समय मेरे साहित्यिक अनुशीलनके अन्तर्गत ७०० श्लोकोंमें केवल १८० श्लोक मूल गीता ओर शेष प्रक्षिप्त प्रतीत हुए। मैं गीता-गायक श्रीकृष्णको एक अनुभवी, चतुर कूटनीतिज्ञ परामर्श-दातामात्र समझता रहा। मैं यह विश्वास करनेमें असमर्थ रहा था कि रणक्षेत्रमें रणवाद्य-घोषोंकी तुमुल-ध्वनिके वीच श्रीकृष्ण १८ अध्यायोंमें निबद्ध ७०० श्लोकों या वाक्यों द्वारा अर्जुनको कैसे समझा पाये होंगे ? निश्चय ही सांख्ययोग, भक्तियोग, विभूतियोग, विश्वरूपदर्शन आदि प्रकरण वादमें जोड़ दिए गए होंगे। फिर भी गीताके कुछ जादूभरे वाक्य मुझे आकृष्ट और मोहित करते रहे, वार-वार पढ़ने और सोचनेके लिए विवश करते रहे। 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं' और 'त्रैगुण्यविषया वेदाः' जैसे वाक्य आज भी मेरे मन-मस्तिष्कको मथ रहे हैं, किन्तु अव सोचनेका ढंग वदल गया है, फिर भी गीता गङ्गा इतनी गहरी हैं कि उसकी थाह लेनेकी शक्ति अभीतक न पा सका, सतहमें तैर रहा हूँ।

साहित्यिक दृष्टिसे तो गीता निश्चय ही विश्व-साहित्यका अद्‌भुत, अद्वितीय महाकाव्य है। जिस परिस्थिति और वातावरणमें श्रीकृष्णने अर्जुनको गीता सुनायी थी, उस समयकी कल्पना करता हूँ तो मुझे गीतामें अनुपम नाटकीय तत्त्वके दर्शन होते हैं। गीताका अध्ययन मैंने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणसे किया तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रीकृष्णने गीतामें और कुछ नहीं, केवल जीवनके मूल्य तथा अर्थविषयक विचार व्यक्त किए हैं। सृष्टिके सर्वोच्च रहस्योंको तथा शाश्वत मूल्योंकी भावनाको भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अन्तर्दृष्टिके प्रकाशमें प्रकट किया है। गीता और कुछ नहीं वह मन और आत्मामें सामञ्जस्य स्थापित करनेका सेतु है।

अव कुछ दिनोंसे गीताके प्रति मेरी धारणा वदल गयी है यह अपूर्व ग्रन्थ मुझे आद्योपान्त ईश्वरका भव्य माहात्म्य समझ पड़ने लगा और अव गीताके पढ़नेमें कुछ और ही रस मिलता है। ऐसा विश्वास जमता जा रहा है कि सत्य बौद्धिक वस्तु नहीं है, वह एक ज्योति है, जिसका साक्षात्कार हमारी मूलभूत महत्त्वाकांक्षाओंके उद्दीप्त होनेपर किया जा सकता है। उस ज्योतिका प्रकाश प्राप्त होनेपर मनुष्य देवता वन सकता है। ●

श्रीमद्भगवद्गीताकी अमर वाणी

योगः कर्मसु कौशलम्

श्रीरघुनन्दन शर्मा

★

जो दिव्य सन्देश हमें गीताके माध्यमसे मिलता है वह नित्यनूतन है। यह समझना कि वह किसी कालविशेषके लिए है, ठीक नहीं है; वह तो सार्वकालिक और शाश्वत है।

आजके समाजके विभिन्न वर्गोके सदस्य अपने कर्त्तव्योंको भूल वैठे हैं। उनकी दशा गीताके मुख्यपात्र अर्जुनकी-सी है। वे उन्हींकी भाँति मोहपाशमें जकड़ जा रहे हैं, अपना कर्त्तव्य निश्चित नहीं कर पा रहे हैं, कर्मकी अनिश्चिततासे ही आजका समाज दुःखी है उसे आत्मिक शान्ति नहीं, मैं क्या करूँ? यही प्रश्न उसके हृदयको मथे डाल रहा है।

आजका मानव भौतिकताकी ओर भाग रहा है। उसे पश्चिमकी चकाचौंधने अपनी ओर आर्कषित कर रखा है। पश्चिमका मानव समझ रहा है कि उसके द्वारा प्राप्त सुख चिरस्थायी नहीं। वह आत्मिक शान्तिको प्राप्त करनेके लिए भारतकी ओर आ रहा है। हम अपनेको भूल रहे हैं। हम क्या थे, क्या होते जा रहे हैं।

आज कर्त्तव्य-पथसे च्युत होनेकी समस्या केवल भारतमें ही नहीं, अपितु सारे विश्वमें विद्यमान है। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ीके प्रति उसकी धारणाओंके प्रति तथा उसके सिद्धान्तोंके प्रति हर पुरातन वस्तुके साथ विद्रोह कर रही है। एक वर्गके लोग कहते हैं कि 'धर्म अफीम है जो अन्यायके प्रति प्रतिशोध नहीं लेने देता।' उन्होंने अपने सिद्धान्त वनाये हैं उनके माननेवालोंके लिए वही धर्म है। उस विचारके संस्थापक ही उनके भगवान हैं। परन्तु विचारणीय यह है कि क्या ऐसा करने से उनके प्रति अन्याय कम हुआ है? क्या इससे शोषण वन्द हुआ? वे यह भूल जाते हैं कि धर्मकी रक्षा करने वालेकी धर्म रक्षा करता है।

आजका विद्यार्थी भी अपने कर्तव्य-पथसे भ्रष्ट होता जा रहा है। वह राजनीतिके दलदलमें पड़कर कुछ वड़े राजनीतिज्ञोंके हाथका खिलौना वनकर रह गया है। छात्रोंमें उच्छृंखलता सारे विश्वमें है। आज वह अपने विद्याध्ययनके मुख्यकार्यको त्यागकर आन्दोलनोंमें पड़ गया है।

आज मजदूरों और मालिकोंके सम्बन्धमें बिगाड़ आ रहा है। उनमें पहले-जैसा स्नेह-भाव नहीं। मजदूरोंकी यदि हड़ताल होती है तो मालिकोंकी तालाबन्दी। आजके लेखकको भी अपने हितोंकी रक्षाके लिए लड़ना पड़ता है। आखिर, ऐसा क्यों? यह सब केवल इसलिए कि आज हम सब अपने कर्त्तव्यसे च्युत हैं, कर्त्तव्योंके प्रति निष्ठावान् नहीं हैं। आज हमारा ध्येय भौतिक साधनोंकी प्राप्ति हो गया है। जब कि हमारा ध्येय परमशान्ति (मोक्ष) की प्राप्ति होना चाहिए। हम अपनी गीताकी उस अमर वाणीको भूल गये हैं कि 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात् अपने कार्योंको कुशलतापूर्वक करना ही योग है।

गीताकी कल्याणमयी वाणी ही आजके मानवके सार्वभौम विकासका सर्वोत्तम साधन है। मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भौतिक सुखसमृद्धि कदापि नहीं है। उसका कल्याण परमशान्ति प्राप्त करनेमें है। शान्ति परमकृपालु भगवान् की कृपामें निहित है। भौतिक सुख तो अशान्तिके कारण हैं। भगवत्कृपाके लिए गीताका बताया गया मार्ग ही परमकल्याणकारी है उसीसे परमशान्ति और मोक्ष भी मिल सकती है। आजका मानव यदि गीताके कर्मयोगको साधन मानकर अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए अग्रसर हो तो निश्चित ही एक दिन वह अपनेको—श्रेष्ठ जीवनको परमावस्थाको प्राप्त कर लेगा। अकेला गीताज्ञान ही मनुष्यको उन्नत बनानेमें सर्वथा समर्थ है। फिर अन्यमार्गोंमें भटकनेकी क्या आवश्यकता है? गीतामृत स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निकला है।

●

नन्दनन्दनकी स्मृति

संसारके सारे सम्बन्ध शरीरतक ही सीमित हैं। इस शरीरके छूट जानेपर जीवको अपना सखा अपना सगा-सम्बन्धी माननेवाला भगवान्‌के सिवा दूसरा कोई नहीं है। अतः हमें अपने उस परम सुहृद, नित्य प्रियतम नन्दनन्दनका स्मरण करते हुए आनन्दमग्न रहना चाहिए। केवल वे ही हेतुरहित उपकारी हैं।

●

समष्टिके लिए कर्म—

गीता और कर्तव्य

ज्यो० श्रीराधेश्याम द्विवेदी

अनेक लोगोंकी यह धारणा है कि 'युद्धके प्रसङ्गमें राग और द्वेषके त्यागका उपदेश देकर युद्धमें तत्पर अर्जुन-द्वारा उसके निकट-सम्बन्धियों और अनेक अक्षौहिणी सेनाका वध कराना श्रीकृष्णके लिए उचित नहीं था। उस समय ज्ञान या कर्मकी भावनाका उपदेश किसी प्रकार उपयुक्त नहीं था।' यह कहना या दोष मढ़ना भ्रममूलक ही नहीं है, अपितु गीता और लोकजीवनके परम उद्देश्यको न समझनेका परिचायक भी है। जो युद्धपरायणता गीतासे सिद्ध होती है, उस सम्बन्धमें तो प्रारम्भमें ही अर्जुनका प्रश्न है कि 'युद्ध करके अपने सम्बन्धियोंका संहारकर रक्त-रंजित भोगोंकी प्राप्तिकी अपेक्षा तो भीख माँगकर जीवन निभाना क्या अच्छा नहीं है?' अर्जुनकी यह मान्यता भूलसे भरी है—यही बताते हुए स्वधर्मकी, कर्त्तव्यकी शिक्षाका बोध भगवान् श्रीकृष्णने उसे कराया है।

जीवन किसलिए है? इस प्रश्नपर स्थिर चित्तसे विचार करनेसे यही निश्चय होता है कि आत्मोन्नति, लोकसेवा और समृद्धिके लिए ही जीवन है। स्थूल समृद्धि और उन्नति अनित्य और क्षणिक है। विश्वक्रममें 'विनाश' जैसी वस्तु है ही नहीं, कारण कि प्रत्येक वस्तु (object) रूपान्तर करती चली जाती है। प्रतिक्षण, प्रतिदिन, प्रतिमास, प्रतिवर्ष, जीवन निरन्तर, बल्कि उत्तरोत्तर वृद्धि (expansion) और उच्चता (perfection) की ओर ही जाता है, अन्यथा विश्वक्रममें कोई भव्यता, उत्तमता, महत्ता, या सारता आ ही नहीं सकती। मृत्यु-संज्ञाका जो रूपान्तर विश्व-रचनामें स्थिर किया गया है उसका उद्देश्य—उसका हेतु, शिथिल और व्यर्थ-जैसे साधनोंको नवीन करके व्यक्ति या समष्टिको अधिक उन्नतिके मार्गमें चलाना मात्र ही है। सारे विश्वकी व्यवस्था व्यक्ति या समष्टिकी वृद्धि (Expansion) उन्नति या उच्चता (perfection) का ही बोधक है। गीताजीमें इसी सूत्रका अवलम्बनकर कर्तव्यमार्गपर जानेका या उसको ग्रहण करनेका उपदेश दिया गया है। कर्तव्यको न समझनेवाले, उसमें अच्छे बुरेका भेद उत्पन्न कर जो पाप-पुण्यकी शङ्का करते हैं, उनका स्पष्टीकरण कर कर्तव्यमें ही सारे लोक-कल्याणका सार बतानेका प्रयत्न गीताद्वारा किया गया है।

कर्तव्य ही समृद्धि और उन्नतिका मार्ग है। यह कर्तव्य अच्छा है, यह कर्त्तव्य बुरा है, इस प्रकारकी शङ्काओंसे कर्तव्यभ्रष्ट होना अथवा अपने अधिकारसे बाहरकी इच्छाओंसे अपने कर्तव्यको चुनना अवनति या अधोगतिका मार्ग है। यदि अवसर प्राप्त होते ही प्रत्येक व्यक्ति

अपने कर्त्तव्यको पूर्ण कर ले तो वह निश्चय ही अपनी उन्नतिके मार्गपर अग्रसर होता जायगा। कर्त्तव्य किये विना कोई व्यक्ति क्या, विश्वका एक अणु भी लेशमात्र उन्नति नहीं कर सकता। कर्त्तव्यमें रत रहनेसे ही हमारे हृदयसे वासनाएँ छूटती हैं, वासनाएँ हटते ही संकुचित भाव तथा भयके स्थानपर हृदयमें विशालता और निर्भयताका राज्य स्थापित हो जाता है। कर्त्तव्य करनेसे ही व्यष्टि समष्टिकी भावनाके समीप पहुँचता है और उसमें समताका योग सिद्ध होता है तथा आत्म-साक्षात्कारका तेज प्रकट होता है। अर्थात् कर्त्तव्यको समझते ही अधिकार-वृद्धिकी सम्भावना स्पष्ट होकर उन्नतिका प्रशस्त मार्ग प्रकट हो जाता है। यदि अधिकार प्राप्त न हो या कर्त्तव्यमें कोई कमी रह जाय तो भी अपने सन्मुख आये हुए कर्त्तव्यसे विमुख होने या शङ्का अथवा भयमें कालक्षेप करनेसे स्वयं कर्तव्य-पालनके लिए जो भी मार्ग सही दीखे, उसपर चलना ही श्रेयस्कर है। इसीलिए गीताके गायकने एकवार नहीं, अनेक वार अनेक प्रकारसे प्रारम्भमें, उपसंहारमें स्वधर्म करनेके लिए ही कहा है।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

मनुष्यको कर्त्तव्यसे विमुख करनेवाली तो उसके हृदयकी संकुचित वृत्ति है। इससे ही लज्जा, भय, शंका, ईर्ष्या, अभिमान, आडम्बर, राग, द्वेष आदि भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, जिनके हृदय विशाल, निर्भय, निःशंक और निरभिमानपूर्ण हैं, उनको कोई भी कर्त्तव्य या कर्म हीन या छोटा प्रतीत नहीं होता। कर्त्तव्यसे विमुख रहना किसी समय भी धर्म नहीं समझा जा सकता है। अर्जुनने अपने श्रेय—भलेके लिए अपने हृदय-दौर्वल्यको दूर करनेका प्रश्न करते हुए श्रीकृष्णसे पूछा है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

हृदयकी संकुचित भावनाको ही उपनिषदोंमें 'कृष्णता,' 'श्यामता,' कलुषितता या कृपणता कहा गया है। इसी कृपणताका भाव कार्पण्य है। इसी कार्पण्य-दोषसे स्वभावमें या समष्टि-भावमें उपघात होता है, जिसके द्वारा भय, शंका और संकुचित भाव जाग्रत् होते हैं, मनुष्य धर्म-अधर्म, पुण्य-पापकी भँवरमें पड़ जाता है और उसकी बुद्धि अतिशय मोहग्रस्त होनेके कारण मोक्ष या निःश्रेयस-मार्गपर नहीं पहुँचती, हृदयके संकोच या दौर्बल्यसे ही मोह शंका, भय इत्यादि विकार उत्पन्न होते हैं और कर्त्तव्य-भ्रष्टता आ जाती है। इसीसे अर्जुन कहता है कि 'हे कृष्ण, मैं धर्म-अधर्मके मोहजालमें फँसकर मूढ़ वन गया हूँ, इस समय रुचिकर या प्रिय लगनेवाली वातका विचार न कर जिससे मेरा हित हो, मेरा श्रेय हो, वही मुझे उपदेश दीजिए।' श्रीकृष्णका उत्तर भी इस प्रश्नके अनुरूप ही है, जो उपनिषदोंके सार गीता-शास्त्रमें समताके सूत्रके रूपमें कर्त्तव्य-कर्मकी भावनासे युक्त है। श्रीकृष्ण गीताका उपदेश करनेके पश्चात् अर्जुनसे पूछते हैं—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनंजय॥

'एकाग्र चित्तसे क्या यह सब तुमने सुना—और यह सुननेसे अज्ञानजन्य तुम्हारा मोह क्या नष्ट हुआ ? अर्थात् प्रारम्भमें बुद्धिको मोह हो जानेसे जो तुम श्रेयका मार्ग नहीं देख रहे थे, और हृदयकी कृपणता, दुर्बलताके कारण धर्मसे च्युत हो रहे थे, उस सबका नाश हुआ या नहीं ? भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रश्नका अर्जुनने भी इसी उपक्रमानुसार उत्तर दिया—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥

'हे अच्युत बुद्धिको धर्म-अधर्मके चक्करमें डालनेवाला मोह नष्ट हो गया है। मेरे स्वभाव और धर्ममें जो दुर्बलता आ गयी थी, जिसे मैं भूल रहा था, तुम्हारे प्रसादसे वह स्मृति आ गयी। होश आ गया। अब मेरा संदेह दूर हो गया और मैं दृढ़ हूँ, तुम्हारी जो आज्ञा होगी, करूँगा, अब मैं अपने कर्त्तव्यको सब प्रकारसे करनेको उद्यत हो गया हूँ।'

गीताके उपदेशसे अर्जुनके चित्तमें समष्टि-भावनाके मार्गरूप कर्तव्यका उदय हो गया, अर्जुन और श्रीकृष्णके प्रश्न और उत्तरपर विचार करनेसे स्पष्ट विदित होता है कि गीताका उद्देश्य कर्तव्यकी भावना उत्पन्न करनेके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है, यही बात अनेक भाष्यकारोंने भी सिद्ध की है। लोकमान्य तिलकने तो गीताशास्त्रका नाम ही 'कर्मयोग-रहस्य रखा है। कर्तव्य या कर्ममें ऊँच, नीच, कर्तव्यका या कर्त्तव्यके किसी प्रकारके फलका विचार तो है ही नहीं, अतः प्रत्येक व्यक्तिको अपना कर्तव्य समझना चाहिए और उस कर्तव्यको आचरणमें लाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने कर्तव्यके फलका ध्यान छोड़कर, समतासे युक्त होकर समष्टि रूपी मालामें गुथी हुई मनियोंमें अपना भी एक स्थान समझे, तो संसारकी सारी रचना ही एक नूतन प्रकारकी और नूतन वैभववाली हो सकती है। प्रतारणा, क्लेश, विग्रह आदि जो राग द्वेष-जन्य स्वार्थपरायण प्रकृतिके व्यापार हैं, वे नष्ट हो सकते हैं और स्पष्टता, प्रेम, एकता, सहनशीलता कर्तव्यके दिव्य गुणोंसे ऐसा बल और सामर्थ्य पैदा हो सकता है कि उनमें उन्नति और समृद्धिका अपूर्व संचय, प्रत्येक देश और प्रत्येक स्थानमें हो सकता है। कर्तव्यकी इस अपूर्व भावनाको ग्रहण करनेका ही भगवान्ने अर्जुनके माध्यमसे समस्त संसारको उपदेश दिया है।

कर्तव्य करते हुए फलकी इच्छा न रखनेका मार्ग तभी सिद्ध होता है, जब प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यको एक यज्ञ या तप रूप समझे, अपना जो कुछ भी है, उसमें समष्टिका भी है, उसे समष्टिके लिए या ईश्वरके लिए अर्पण करे, तभी फलकी इच्छा छूट सकती है, क्योंकि जो अर्पण हो गया, उसमें किसी समय किसी प्रकारकी भी आशा नहीं रखी जाती, परम प्रेमकी अवधि स्वार्पणमें ही है। मनुष्यको अपना कुछ भी नहीं समझना चाहिए। पर-अर्थके लिए अर्पण करना सामान्य प्रेमका स्वरूप है। समष्टिमें आत्मभावका अनुभव करनेवालोंके कर्तव्यमें, इस प्रेमके स्वार्पणका पूर्ण प्रकाश दिखायी देता है, जीवन जिस तरह कर्तव्यमय है, उसी तरह कर्तव्यमात्र अर्पणरूप है, यज्ञसे धूआँ, धूँएँसे मेघ, मेघसे अन्न; अन्नसे प्रजाकी उत्पत्ति या पालन होता है। इसी प्रकार विश्वक्रममें संलग्न मनुष्यका जीवन भी है।

प्रणति

श्रीजगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल'

प्राण-दीप से करूँ आरती, स्वीकारो हे प्राण-पूत-कर।
तिमिर तिरोहित हो उर-वनका ज्योति पसारो हे भ्रम-तम-हर ॥
कलित कलानिधि-कंज तुम्हारे पगपर सुधा-सुरभि बरसाता।
सुधा-सृष्टिको वितरित करते, तुम हे अगणित रूप सुधाकर ॥

नभ-पयोधिमें मुदिर-लहर उठ, करती चारु चरण प्रक्षालित।
चरण-तरंगिणि मन्दाकिनि, बह निकली भूपर हे पावन-कर ॥
कोटि-कोटि तारक-हीरक-दल रजनी जड़ती निशा-वसनमें।
तुम न किन्तु धारणा करते है प्रकृति लूटती हे पर-हित-कर ॥

लिये धरित्री शरद-ग्रीष्म वर्षा वसन्तके विविध विभव,
खोज रही अर्पण करनेको तुम्हें निरन्तर हे धरणी-धर ॥
सृष्टि स्थिति और नाशके, कारण मरण तुम्हीं कहलाते।
सृष्टि-नाश निर्भर इंगितपर हे संसृति कर। हे इंगित-कर ॥

निखिल भुवन शरणागत होकर,
कीर्ति-कलाप निरन्तर गाता।
कवि कविता उपहार चढ़ाता
स्वीकारो हे काव्य-कलाधर ॥

●

समन्वयात्मक विवेचन

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

डॉ० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

श्रीमद्भगवद्गीताके चतुर्थ अध्यायका नामकरण 'ज्ञानकर्म संन्यासयोग' किया गया है। इस अध्यायमें ज्ञान (तत्त्वज्ञान), कर्म (कर्मयोग, योगमार्ग) और संन्यास (सांख्ययोग, ज्ञानमार्ग) का समन्वित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भगवान् वासुदेवने श्री भगवान्के अवतारका वास्तविक रहस्य निरूपित किया है। श्री रामानुजाचार्यजीके अनुसार 'मन्वन्तरके आदिमें सम्पूर्ण जगत्के उद्धारके लिए कर्मयोगका उपदेश किया गया है' इस कथनसे इस कर्मयोगकी ही कर्तव्यताको दृढ़ करके तथा ज्ञानयोग इसके अन्तर्गत होनेके कारण इसकी ज्ञानयोगाकारता दिखलाकर, कर्मयोगका स्वरूप, उसके भेद और कर्मयोगमें ज्ञानके अंशकी ही प्रधानता बतलायी जाती है।

चतुर्थ अध्यायके प्रारम्भमें भगवान्ने कर्मयोगकी परम्पराका निरूपण किया, उसकी प्रशंसाकी और अपने अवतार का रहस्य बतलाते हुए कहा—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥ ४।६

अर्थात् भगवान् नित्य-शुद्ध-बुद्ध, मुक्त हैं। यद्यपि वे अजन्मा, अव्ययात्मा हैं, ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण भूतोंका नियमन करनेवाले ईश्वर हैं तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको, जिसके वशमें सब जगत् वर्तता है और जिससे मोहित हुआ मनुष्य वासुदेव रूप अपने आपको नहीं जानता, उस अपनी प्रकृतिको अपने वशमें रखकर केवल अपनी लीलासे ही शरीरवाले-से जन्म लिये हुए-से हो जाते हैं, अन्य लोगोंकी भाँति जन्म नहीं लेते।

वह जन्म तब होता है जब 'धर्मस्यग्लानिर्भवति', 'अभ्युत्थानमधर्मस्य' वाली स्थिति होती है, तब ही अपनी मायासे भगवान् अपने स्वरूपको स्वयं रचते हैं (तदात्मानं सृजाम्यहम्)। यही अवतार है। उद्देश्य भी स्पष्ट है 'परित्राणाय साधूनाम्' और 'विनाशाय दुष्कृताम्' तथा 'धर्मसंस्थापनार्थाय'। भगवान् युगधर्मकी अपेक्षा धर्मकी अधिक हानि हो जानेपर आवश्यकतानुसार एक ही युगमें बार-बार प्रकट होते हैं।

ऐसे भगवान्के अवतारका लीला-रहस्य जानकर, भगवान्की माधुरीमें जो पूर्णतया शरण्य होकर स्थित हो गये हैं, एकमात्र उन त्रिभुवनपालकको ही प्रिय मानकर उनमें एक चित्त हो

गये हैं, वे तो उन्हें ही प्राप्त होते हैं। वे तो पुनर्जन्मके बन्धनसे छूट जाते हैं, भगवान् स्वयं प्रतिज्ञा करते हुए कहते हैं—

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।४।९

किन्तु एक ही मनुष्यमें एक ही समय मुमुक्षत्व और फलार्थित्व यह दोनों एक साथ नहीं हो सकते। अतः भगवान् कहते हैं 'मेरी शरण लेनेकी अपेक्षा रखनेवाले जो पुरुष अपनी अपेक्षा-के अनुसार जिस प्रकार मेरे रूपकी कल्पना करके मेरे प्रपन्न होते हैं उन्हें उनके मनोवांछित प्रकारसे ही भजता हूँ। अर्थात् उनकी कामनाके अनुसार ही फल देकर उनपर अनुग्रह करता हूँ, क्योंकि उन सकामी भक्तोंको मोक्षकी इच्छा नहीं होती।'

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।। ४।११

चतुर्थ अध्यायमें कर्मकी श्रेष्ठता निरूपित करते हुए भगवान् उसकी परम्परा बताते हैं। कर्म तो पहलेके मुमुक्षुओंके द्वारा भी किये गये हैं—

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।। ४।१५

किन्तु अर्जुन कर्म और अकर्ममें भेद नहीं कर पाता, अतः भगवान् कहते हैं 'जिसके अन्तर्गत ज्ञान है, ऐसा जो कर्म है, वह मैं तुझसे कहूँगा; जिसका आचरणकर तू संसार-बन्धनसे मुक्त हो जायेगा।' (४।१६) भगवान् कहते हैं कि 'कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्म देखनेवाले मुमुक्षु पुरुषके समस्त समारम्भ कामना और संकल्पोंसे रहित होते हैं, जिसके द्वारा बिना ही किसी प्रयोजनके—यदि वह प्रवृत्तिमार्गी है तो लोकसंग्रहार्थ और निवृत्तिमार्गी है तो जीवन-यात्रा निर्वाहार्थ—केवल चेष्टामात्र ही क्रिया होती है।' इस प्रकार कर्म करते हुए कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्मदर्शन रूप ज्ञानाग्निसे जिसके पुण्य-पाप रूप सम्पूर्ण कर्म दग्ध हो गये हैं, ऐसे मुमुक्षुको तत्त्वज्ञ पुरुष पण्डित कहते हैं। इसलिए कर्मोंकी ज्ञानरूपता सिद्ध होती है। (४।१९) ज्ञानीके द्वारा किये हुए कर्म वास्तमें अकर्म है क्योंकि वह कर्म फलासङ्गविवर्जित, नित्यतृप्त, निराश्रय है तथा निष्क्रिय आत्माके ज्ञानसे सम्पन्न है; अतः वह करते हुए भी कुछ नहीं करता अर्थात् कर्मके बन्धनमें नहीं बँधता। क्योंकि 'निराशीः' 'यतचित्तात्मा' 'त्यक्तसर्वपरिग्रह' पुरुष शरीरस्थितिमात्रके लिए जो कर्म करते हैं उनसे पाप-पुण्य दोनोंको प्राप्त नहीं होते। बन्धनकारक होनेसे धर्म भी मुमुक्षुके लिए तो पाप ही है। यदि पाप लोहेकी बेड़ियाँ हैं तो पुण्य सोनेकी बेड़ी। दोनों ही बन्धनकारक है, अतः भगवान् कर्मबन्धनसे छूटनेके लिए मुमुक्षुत्व-भाव अपनानेको कहते हैं। आसक्तिरहित, मुक्त आत्मज्ञानमें स्थित चित्तवाले पुरुषके कर्म पूर्णतया विलीन हो जाते हैं (४।२३) इसीलिए द्रव्यमययज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ एवं प्रशंसनीय है। क्योंकि, भगवान् कहते हैं, 'हे पार्थ ! सब-के-सब कर्ममोक्ष साधनरूप ज्ञानमें, जो कि सब ओरसे परिपूर्ण जलाशयके समान है, समाप्त हो जाते हैं अर्थात् उन सबका ज्ञानमें अन्तर्भाव हो जाता है। ४।३३। और सेवा तथा विनयसे प्रसन्न हुए तत्त्वदर्शी ज्ञानी ही ऐसे ज्ञानका उपदेश देते हैं, दूसरे

नहीं। जिस प्रकार भलीभाँति प्रदीप्त अग्नि ईंधनको भस्मरूप कर देता है वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि ईंधनको भस्मरूप कर देता है अर्थात् निर्बीज कर देता है किन्तु प्रारब्ध कर्मोंको भस्म नहीं करता। उनका फल तो भोगना ही पड़ता है। जिस कर्मसे शरीर उत्पन्न हुआ है, वह फल देने के लिए प्रवृत्त हो चुका इसलिए उसका नाश तो उपभोग द्वारा ही होगा। किन्तु जो कर्म अभी तक फल देने में प्रवृत्त नहीं हुए हैं वे ज्ञानाग्निसे भस्म हो जाते हैं। ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयनका इसको व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'तत्वज्ञान रूप अग्निके प्रकट होते ही समस्त पूर्व सञ्चित संस्कारोंका अभाव हो जाता है। मन, बुद्धि और शरीरसे आत्माको असङ्ग समझ लेनेके कारण उन मन, इन्द्रिय और शरीरादिके साथ प्रारब्ध भोगोंका सम्बन्ध होते हुए भी उन भोगोंके कारण उसके अन्तःकरणमें हर्ष-शोक आदि विकार नहीं हो सकते। इस कारण वे भी उसके लिए नष्ट हो जाते हैं और क्रियमाण कर्मोंमें उसका कर्तृत्वाभिमान तथा ममता, आसक्ति और वासना न रहनेके कारण उनके संस्कार नहीं बनते; इसलिए वे कर्म वास्तवमें कर्म नहीं हैं।'

'इस प्रकार उसके समस्त कर्मोंका नाश हो जाता है और जब कर्म ही नष्ट हो जाते हैं, तब उनका फल तो हो ही कैसे सकता है? और बिना 'सञ्चित संस्कारोंके उसमें राग-द्वेष तथा हर्ष-शोक आदि विकारोंकी वृत्तियाँ भी कैसे हो सकती हैं। अतएव उसके समस्त विकार और समस्त कर्मफल भी कर्मोंके साथ ही नष्ट हो जाते हैं।' (४।३७)

इसके अनन्तर भागवान तत्वज्ञानकी महिमा प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'कर्मयोगके द्वारा वही ज्ञान मुमुक्षु स्वयं अपने आत्मामें ही पाता है, साक्षात् किया करता है—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ ४।३८

किन्तु ज्ञान प्राप्त करनेके लिए श्रद्धावान् होना भी आवश्यक है। श्रद्धाकी कमी के कारण साधनमें अकर्मण्यता और आलस्य आदि दोष हो जाते हैं, अतः अभ्यास तत्परतासे नहीं हो पाता। अतः श्रद्धावान् होनेके साथ ही तत्पर भी हो और संयतेन्द्रिय भी—

श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। ४।३९

वस्तुतः भगवान्‌ने यह कसौटी प्रस्तुत की है। हम ज्ञानप्राप्तिमें क्यों असफल होते हैं, अश्रद्धाके कारण, अतत्परताके कारण और असंयतेन्द्रिय होनेके कारण। जब तक इन्द्रिय और मन वशमें न हों, श्रद्धापूर्वक कटिबद्ध होकर उत्तरोत्तर तीव्र अभ्यास करते रहना चाहिए; क्योंकि श्रद्धापूर्वक तात्र अभ्यास की कसौटी इन्द्रियसंयय है। ज्ञान प्राप्त होते ही परमशान्ति की प्राप्ति होती है। किन्तु ज्ञान प्राप्तिके क्षेत्रमें अज्ञ, अश्रद्धानः और संशयात्मा तो नष्ट ही हो जाता है। वह परमार्थसे भ्रष्ट होकर न इस लोकमें सुख पाता है न परलोकमें। इन तीनोंमें भी संशयात्मा का तो कहीं टिकाना नहीं है; अतः संशय नहीं करना चाहिए।

इसीलिए भगवान् वासुदेव चतुर्थ अध्याय का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि, हे भारत ! तू हृदयस्थित इस अज्ञानजनित संशय का विवेकज्ञान रूप तलवार द्वारा छेदन करके समत्वरुप कर्मयोगमें स्थित होकर युद्धके लिए उठ खड़ा हो।'

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४।४२

अर्थात् संशयरहित होकर मेरे कहे अनुसार कर्मयोगमें स्थित हो। आदि जगद्गुरू शंकराचार्यने गीता-भाष्यमें अपना अभिमत प्रकट करते हुए लिखा है। 'क्योंकि कर्मयोग का अनुष्ठान करनेसे अन्तःकरणकी अशुद्धिका क्षय हो जाने पर उत्पन्न होनेवाले आत्मज्ञानसे जिसका संशय नष्ट हो गया है ऐसा पुरूष तो ज्ञानग्निके द्वारा उसके कर्म दग्ध हो जानेके कारण कर्मोंसे नहीं वँधता; तथा ज्ञानयोग और कर्मयोगके अनुष्ठानमें संशय रखने वाला नष्ट हो जाता है।' अतः अपने नाशके कारणरूप इस संशयको काटकर (सम्यग्दर्शनोपायकर्मानुष्ठानम् आतिष्ठ) सम्यक् ज्ञान की प्राप्तिके उपायरूप कर्मयोगका अनुष्ठान करो।'

चतुर्थ अध्यायमें महत्वपूर्ण बात ज्ञाननिष्ठापूर्वक कर्मयोग की है। ज्ञान तो सबको अग्नि की तरह पवित्र कर देता है। ज्ञाननौकापर सवार होकर पापसमुद्रसे पार होने की बात भी बड़ी ही कवित्व-पूर्ण है। भगवान्ने एक सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत करके प्रबोध किया है। ज्ञाननिष्ठासे पूर्ण जो कर्मयोगी है उसका कर्म अकर्म ही है, बन्धनरहित है, संन्यासके तुल्य है। अर्थात् जैसा कि इस अध्याय का नाम है 'ज्ञानकर्मसंन्यासयोग' वैसा ही उपदेश भी 'ज्ञाननिष्ठासे पूर्ण कर्मयोग' का किया गया है। ऐसा कर्मयोग वस्तुतः संन्यासयोग ही है और मोक्षका कारण है।

•

सिद्धि किसे प्राप्त होती है ?

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥
(गी० १८।४६)

जिससे समस्त भूतोंकी प्रवृत्ति (उत्पत्ति, रक्षा एवं कर्मपरता) होती है; जिसने इस समस्त विश्वको व्याप्त कर रक्खा है, उस सर्वव्यापी परमेश्वरकी जो अपने कर्मसे अर्चना करता है—कर्तव्यपालनद्वारा पूजा करता है, वही मनुष्य सिद्धिको प्राप्त करता है, उसे ही मुक्ति या भगवान्की प्राप्ति होती है।

•

सन्त समागम

श्रीजयकिशन प्रसाद

★

[वृन्दावनसे वयोवृद्ध पण्डित हरिप्रसादजी ज्यौतिषी पधारे । उनसे जो समागम—भगवद्विषयक वार्तालाप हुआ वह प्रस्तुत है ।]

ईश्वराधनासे ही मानव जीवन सफल हो सकता है। भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णने मानवहितार्थ अपना जीवन-चरित प्रकाशित किया। भगवान् राम मर्यादा-पुरुषोत्तम थे, वचनके, प्राणके, सङ्कल्पके दृढ़ थे और उन्होंने कोई नई बात नहीं की, 'रघुकुल रीति सदा चलि आई'— रघुवंशमें सभी ऐसे ही प्रणवीर रहे—दशरथने तो प्राण दे ही दिए। तो ऐसे प्रणपालक वंशमें उत्पन्न होकर ही तो श्रीराम भी सत्यसङ्कल्प, मर्यादापुरुषोत्तम बने। ऐसे प्रणवीर बनो, भगवान्की शरणमें जाओ। सत्यसंकल्प श्रीराम रक्षा करेंगे। सत्य सङ्कल्प ही रक्षा करेगा।

दुर्योधन—दस हजार हाथियोंका बल, लेकिन द्रोपदीकी साड़ी न उतार सका। क्यों ? दानके बलसे। द्रौपदीने एक साधुकी लाज-रक्षाके लिए एक चीर दिया था—तन ढकनेको, उसीका आशीर्वाद था कि भगवान् तेरी भी लाज रखेगा। अब कल्पना कीजिये कि दस हजार हाथियोंके बलवाला दुर्योधन—उसका भाई दुःशासन—लेकिन चीर हरण न कर सके। दानके बलने रक्षा की।

संसारमें विभिन्न प्राणी है, किसीका हाथ नहीं, किसीका पैर नहीं, किसीकी आँख नहीं। कर्म प्रधान विश्व है। यजुर्वेदमें नमो ब्रह्मणे कहा, 'नमो गोमात्रे'। पृथ्वी भी गौ रूप है। हमारा पालन करती है, माँ है। प्रातःकाल उठकर उसे नमन करो। हे माँ ! हमारे द्वारा जो कष्ट पहुँचा हो, जान-अनजानमें पाप हुए हों, उनके लिये क्षमादान दो। प्रातः उठते ही हाथ देखो—कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती, करमूले स्थितो ब्रह्मा।

धीरज-धर्म-मित्र अरु नारी—ये चारों विपत्तिकी कसौटीपर कसे जाते हैं। सन्त तो धीरज ही बँधा सकते हैं, बाकी तो कर्मप्रधान विश्व है। झूठेमें रम रहा है, सच्चेको भुला दिया है। गृहस्थका कर्तव्य तो करो किन्तु उस परमात्माको मत भूलो। क्यों—फँसा है जीव इस जालमें तो दुर्गतिको तो मत भूलो। बहुतसे जीवोंकी दुर्गति हो रही है। सुखके भोगके समय भी दुर्गतिका स्मरण रहना आवश्यक है। संस्कार बड़े प्रबल होते हैं। संस्कार वश ही सन्त महात्मा हमारे घर पधारे—चर्चा हुई। सन्त तो सत्का ही प्रवचन करता है। धन्यभाग।

●

श्रीकृष्णके कर्मकी दिव्यता

श्रीरामलाल

★

श्रीकृष्णके कर्मकी दिव्यता यह है कि वे लोकव्यवहारमें कर्म करते हुए मनुष्यके समान दीख पड़ते हैं पर हैं मनुष्यकी संकीर्ण सीमासे परे। उनको मनुष्य मान लेना हमारा अज्ञान है। जब वे असंग भगवान् जगत्में कर्म करते हैं तब लोक उन्हें अपने ही समान कर्म करते देखकर आसक्त मनुष्य मान लेनेकी भूल कर बैठते हैं।

तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम्।
आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः॥
(श्रीमद्भागवत १।११।३७)

श्रीकृष्णका महाभारतगत चरित्र ही उनका राष्ट्रनायक रूप है। दुर्योधन, शिशुपाल और जरासन्धकी आसुरी भोगमूलक सत्तासे आक्रान्त मानवका—पाण्डववर्गका संरक्षणकर उन्होंने मानवताका राष्ट्रीय मानदण्ड प्रस्तुत किया। महाराजा विराटकी कन्या उत्तराके अभिमन्युके साथ पाणिग्रहणके अवसरपर विराटके राज्यमें निमन्त्रित पाण्डव-पक्षके श्रीकृष्ण तथा पांचाल आदि नरेशोंने महाभारत युद्धकी प्रमुख योजना निश्चित की। धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा संचालित भागवत-राज्यके व्यापक स्वरूपपर विचारकर श्रीकृष्ण द्वारिका आये ही थे कि गुप्तचरोंसे सूचना पाकर दुर्योधनने द्वारिका आकर उनसे सारी नारायणी सेना मांग ली; अर्जुनने अपने पक्षमें सारथिके रूपमें श्रीकृष्णका वरण कर लिया। दुर्योधनके चले जानेपर श्रीकृष्णने अपने वरणका कारण जानना चाहा, अर्जुनने समाधान किया कि मेरी बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी कि आपको सारथि बनाऊँ। मेरी चिरकालिक अभिलाषा आप पूरी करें। श्रीकृष्णके प्रति वचन हैं :

सारथ्यं तु त्वया कार्यमिति मे मानसं सदा।
चिररात्रेप्सितं कामं तद्भवान् कर्तुमर्हति॥
(महाभारत उद्योग ७।३७)

श्रीकृष्ण उस समय लोकमें श्रेष्ठतम थे, यह अच्छी तरह जानकर भी दुर्योधन अपने अज्ञान—राज्यभोगान्धकारसे विमोहित होकर अपने पक्षमें उन्हें न कर सका। विधिका विधान ही ऐसा था। दुर्योधनने उस समय नारायणी सेना माँगते कहा था :

त्वं च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन।

(महाभारत उद्योग ७।१४)

पार्थ-सारथिने इस घटनाके वाद महाभारतका सम्पूर्ण संचालन किया। कौरवशक्तिका अन्त कर युधिष्ठिरको राजसिंहासनपर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने सम्पूर्ण राष्ट्रका संरक्षण किया।

श्रीकृष्णने महाभारत छिड़नेके पहले हस्तिनापुरमें पाण्डवदूतके रूपमें जाकर दोनों पक्षमें सन्धिकी स्थापनाका प्रयत्न किया, पर दुर्योधनने उनकी वात नहीं चलने दी। श्रीकृष्णने कहा कि जो पाण्डवोंसे द्वेष करता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है, जो अनुकूल है, वह मुझसे भी अनुकूल है। तुम मुझे धर्मात्मा पाण्डवोंके साथ एकात्म समझो।

यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः॥

(महाभारत उद्योग ९१।२८)

जब दुर्योधनने पाण्डवोंके मूलोन्मूलनके लिए कमर कस ली और यह कहा कि 'मेरे जीते जो पाण्डवोंको उतना अंश भी नहीं दिया जा सकता जितना एक वारीक सूईकी नोंकसे छिद सकता है' तव श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरके परित्राणके लिए विकट रूप धारण कर लिया। दुर्योधनने कहा था :

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति॥

(महाभारत उद्योग १२७।२५)

दुर्योधनने श्रीकृष्णको कैदकर लेना चाहा। श्रीकृष्णने कहा कि 'दुर्योधन! तू मोहवश मुझे अकेला मान रहा है। मेरा तिरस्कार कर पकड़ना चाहता है, यह तेरा अज्ञान है।' ऐसा कहकर उच्च स्वरसे श्रीकृष्ण अट्टहास करने लगे, उनके अंगसे विद्युत्के समान कान्तिवाले तथा अंगूठेके वरावर छोटे-छोटे शरीरवाले देवता आगकी लपटें छोड़ने लगे। उनके ललाटमें ब्रह्मा और वक्षस्थलमें रुद्र विराजमान थे। समस्त लोकपाल उनकी भुजाओंमें स्थित थे, मुखसे अग्निकी लपटें निकलने लगीं। आदित्य, वसु, इन्द्र, गन्धर्व आदि उनके अनेक अंगोंमें प्रकट हो गये।

'एवमुक्त्वा जहासोच्चैः केशवः परवीरहा।
तस्य संस्मयतः शौरेर्विद्युद्रूपा महात्मनः॥
अङ्गुष्ठमात्रास्त्रिदशा मुमुचुः पावकार्चिषः।
तस्य ब्रह्मा ललाटस्थो रुद्रो वक्षसि चाभवत्॥
लोकपाला भुजेष्वासन्नग्निरास्यादजायत।
आदित्याश्चैव साध्याश्च वसवोऽथाश्विनावपि॥
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवास्तथैव च।
वभूवुश्चैव यक्षाश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः॥'

(महाभारत उद्योग १३१।४–७)

श्रीकृष्ण द्वारा यह विकटरूप-दर्शन दुर्योधनके लिए चेतावनीका दृश्य था। धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें कौरव-पाण्डव दोनों पक्षोंके महारथियोंने शंखघोष किया। अर्जुनने देवदत्तशंख और श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य निनादित किये। अर्जुनके मनमें अपने संयोगियों—सम्बन्धियोंको देखकर व्यामोह पैदा हो गया; श्रीकृष्णने गीताके द्वारा सम्बोधनकर अर्जुनको युद्धकर्ममें नियोजित किया; युद्धारम्भसे अन्ततक श्रीकृष्णके विरुद्धधर्माश्रयी रूपका परिचय मिलता है। शिखण्डीकी ओटमें अर्जुनने भीष्मका वध किया, 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो' के विज्ञापन—माध्यमसे चक्रव्यूहकी रचनाकर अधर्मपूर्वक अभिमन्यु वधका कारण उपस्थित करने-वाले आचार्य द्रोणका प्राणान्त हुआ। इसी तरह पृथ्वीमें अटके रथके पहियेको निकालते समय कर्णके वधका श्रीकृष्णने अर्जुनको संकेत किया। कर्णने धर्मके आश्रयकी याचनाकी, श्रीकृष्णने तत्काल प्रतिवाद किया कि कौरवकी भरी सभामें द्रौपदीके प्रति अपशब्दका आश्रय लेते समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था। महाभारतके अन्तमें भीम और दुर्योधनमें गदायुद्ध होते देखकर अर्जुनसे श्रीकृष्णने कहा कि यदि भीम धर्मपूर्वक युद्ध करते रहे तो कदापि नहीं जीतेंगे और अन्यायपूर्वक युद्ध करनेपर निश्चय ही दुर्योधनका वधकर डालेंगे। भीमसेनको मायामय पराक्रमका ही आश्रय लेना चाहिए। श्रीकृष्णके शब्द हैं।

'भीमसेनस्तु धर्मेण युद्धयमानो न जेष्यति।
अन्यायेन तु युध्यन् वै हन्यादेव सुयोधनम्॥
तस्मान्मायामयं भीम आतिष्ठतु पराक्रमम्।'

(महाभारत शल्य ५८।४, ६)

अर्जुनने अपनी वाँयी जाँघ ठोककर संकेत किया, भीमने इसतरह दुर्योधनका वधकर डाला। श्रीकृष्णका यह अन्याय नहीं, न्याय था, अधर्म नहीं धर्म था। श्रीकृष्णके ही जीवनकी घटना है। अभिमन्युके वधके वाद जयद्रथ-वध-प्रसंगमें युद्धमें अर्जुनके घोड़े शस्त्र-अस्त्रसे घायल हो गये। श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथी थे, युद्धमें उनकी मति-गतिके संचालक थे। उन्होंने घोड़ोंकी स्वयं सेवाकी। अपने दोनों हाथोंसे वाण निकालकर उन घोड़ोंको मला, यथोचित रूपसे टहलाकर पानी पिलाया। पानी पिलानेके वाद नहलाया, घास और दाने खिलाये। थकावट दूर होनेपर उत्तम रथमें उनको जोत दिया। परमात्मा श्रीकृष्णकी ऐश्वर्यमयी शक्तिके संयोजनका यह सजीव दृश्य है।

श्रीकृष्णकी परमात्मसत्ता लोकसेवामयी स्वीकार की जा सकती है। महाभारतके माध्यमसे उन्होंने सम्पूर्ण राष्ट्रका संरक्षणकर पृथ्वीका भार उतार दिया, यही उनकी राष्ट्रनायकता है। शुकदेवने परीक्षितसे कहा था कि 'श्रीकृष्णने बलरामजी तथा अन्य यदुवंशियोंके साथ मिलकर बहुतसे दैत्योंका संहार किया, कौरव और पाण्डवोंमें शीघ्र मारकाट मचानेवाला अत्यन्त प्रवल कलह उत्पन्न कर पृथ्वीका भार उतार दिया।'

'कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः।
भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन् कलिम् ॥'

(श्रीमद्भागवत ११।१।१)

श्रीकृष्ण सनातन हैं, उनका अवतार नित्य है, अवतार-परम्परा शाश्वत और अविच्छिन्न है। श्रीकृष्णका वचन है कि 'मेरे अवतारका यही प्रयोजन है कि पृथ्वीका भार उतार दूँ, साधु-सज्जनोंकी रक्षा करूँ, दुष्टोंका संहार करूँ। समय-समय पर धर्मकी रक्षा और अधर्मको रोकनेके लिए मैं इसी तरह अनेक शरीर धारणा करता हूँ।'

निःसन्देह जिस ओर सत्य, धर्म, लज्जा और सरलता है, हृदयकी निर्मलता है, उसी ओर श्रीकृष्ण रहते हैं। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है।'

'यतः कृष्णस्ततो जयः।'

(महाभारत उद्योग ६८।९)

श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान हैं, सबके आदिकारण परम पुरुष नारायण हैं, लोगोंको मोहित करते हुए अपनी माधुर्य-सौन्दर्य-ऐश्वर्यमयी लीलासे जगत्का संरक्षण करते हैं।

●

ऐसा बल दो भगवान् !

हमें ऐसा बल दो भगवान्।
जिससे कभी समीप न आयें पाप-ताप बलवान॥
पर-सुख-हित निमित्त निज सुखका हो स्वाभाविक त्याग।
बढ़ते रहें पवित्र भाव, हो प्रभु-पदमें अनुराग॥
भोगोंमें न रहे रंचकभर मेरापन-अभिमान।
बनी रहे स्मृति सदा तुम्हारी पावन मधुर महान्॥
लीला-गुण शुचि नाम तुम्हारा हो जीवन-आधार।
रोम-रोमसे निकले सदा तुम्हारी जय-जयकार॥

श्री भाईजी

नव-वधुओंकी आन्तरिक वेदनाका मार्मिक चित्रण

"कौना दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ"

कविवर पं० श्रीधरीक्षण मिश्र

★

[भोजपुरी भाषाके महाकवि श्री पं० धरीक्षणजी मिश्र पूर्वाञ्चलमें सुप्रसिद्ध हैं। देवरिया जनपदके तमकुही-राज्यके समीप बरियारपुर नामक एक गाँव है, जिसे मिश्र जीने अपने जन्म तथा निवास द्वारा गौरवान्वित किया है। आपने छासठ शरद और वसन्त देखे हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा हाईस्कूल तककी हुई है। परन्तु उन दिनोंके हाई स्कूलके छात्र आजके बी० ए० से अधिक योग्यता रखते थे। आप उन्हीं सुयोग्यतम छात्रोंमें अग्रगण्य रहे हैं। बालकालसे ही आपके आचार व्यवहार और विचार स्वच्छन्द रहे हैं। इसीलिए आपने कहीं नौकरी न करके ग्राम्य जीवनका ही सहर्ष वरण किया और कृषिके काममें हाथ बाँटने लगे। हृदयमें काव्य-प्रतिभा उद्बुद्ध हुई और आप ग्रामीण जनोंकी बोलीमें ही कविता लिखने लगे। वेष-भूषामें भी आप ठेठ देहाती दिखायी देते हैं। सादा जीवन उच्च विचारके मूर्तिमान् आदर्श हैं। कमसे कम कपड़ोंसे काम चलाते तथा खद्दर धारण करते हैं। आपकी व्यङ्ग्य कविताएँ भी बड़ी मार्मिक होती हैं। कविसम्मेलनोंमें आपकी कविताएँ बड़े चावसे सुनी जाती हैं और आप सदा बुलाये जाते हैं। आपने अपने गाँवमें एक भैंसवार-मण्डलकी स्थापनाकी है; मण्डलके सभी सदस्य सहृदय पुरुष और कविता-प्रेमी हैं; सबने अच्छे-अच्छे कवियोंकी चुनी हुई कविताएँ कण्ठ कर रखी हैं और बड़ी मस्तीसे उन्हें सुनाते हैं। धरीक्षणजी बड़े बिनोदी हैं और उनके अधर-संपुटपर सतत मुसकानकी आभा बिखरी रहती है। यहाँ उनकी एक कविता प्रकाशित की जा रही है; जो अत्यन्त मर्मस्पर्शिनी है। देहातके गाँवोंसे जब विवाहिता कन्याएँ प्रथमबार डोलीमें बैठकर ससुराल जाती हैं, तब वे बहुत रोती हैं और बहुत दूर तक उनकी वह रुलाई बन्द नहीं होती है। धरीक्षण जीके कवि हृदयने उनके रोनेके कारणोंकी उत्प्रेक्षा की है। उन कारणोंके मर्मको समझने-वाले श्रोता या पाठकोंकी आँखें आसुओंसे छलछला उठती हैं। इस कवितामें समाज-सुधार-की भावना कूट-कूटकर भरी है]

भारत स्वतन्त्र भैल साढ़े तीन प्लान गैल
बहुत सुधार भैल जानि गैल दुनियाँ
वोटके मिलल अधिकार मेहरारुनका
किन्तु कम भैल ना दहेजके चलनियाँ
एही दहेज खातिर बेटिहा पेरात बाटे
तेली मनों गारि गारि पेरत वा घनियाँ
बेटीके जनम बा बवाल भैल भारतमें
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ १ ॥

भारत स्वतन्त्र हुआ, साढ़े तीन पाञ्चवार्षिक योजनाएँ बीत गयीं। बहुत कुछ सुधार हुआ। सारी दुनिया इस बातको जान गयी। औरतोंको वोट देनेका अधिकार मिल गया, परन्तु दहेजकी चलन (प्रथा) बन्द नहीं हुई। इसी दहेजके कारण बेटीवाले लोग उसी तरह पेरे जाते हैं, जैसे तेली कोल्हूमें सरसोंकी घानीको गार-गारकर पेरता है। भारतमें बेटीका जन्म बवाल हो गया है—इन्हीं दुखोंका अनुभव करके डोलीमें बैठी हुई नव-वधू रोती जा रही है ॥ १ ॥

दिल्लीका गद्दी पर बैठलि मेहरारुवे बा
ओहीके बाटे उहाँ चलत परधनियाँ
जल थल आ नभ तीनूं सेनाके सेनापति
दागें सलामी ओके साथ ले पलटनियाँ
यू० पी० में तिरिया राज बाटे सुतारन भैल
गुप्ता आ त्रिपाठी जीमें होत बा बजनियाँ
एहू त्रिया राजमें ना सुख भैल बेटिनका
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ २ ॥

दिल्लीकी गद्दीपर भी औरत ही बैठी है, वहाँ उसीकी प्रधानता चल रही है। जल स्थल तथा आकाश तीनों ही सेनाओंके सेनापति सेनाको साथ लेकर उसे सलामी दे रहे हैं। उत्तर प्रदेशमें भी स्त्री-राज्य है सौभाग्यसे ह यह अच्छा अवसर मिल गया है, इधर गुप्ताजी और त्रिपाठीजीमें मल्लयुद्ध चल रहा है। इस स्त्री-राज्यमें भी पुत्रियोंको सुख नहीं मिला—इसी दुःखसे नव-वधू डोलीमें रोती जा रही है ॥ २ ॥

एके दू कौर खाके रातो दिन रहेके परी
देहिके जरावे लगी भूखिके अगिनियाँ
खैलाका पहिले आ पाछे थारी जाच करे
अइहें बलाके कुछ माई आ बहिनियाँ

१. जब यह कविता लिखी गयी थी, उन दिनों सुचिता कृपलानीका मुख्य मन्त्रित्व था।

ढेर खैलासे ऊ सब लागी बदनाम करे
ऐसने बा एकरा खन्दानके रहनियाँ
एही तरे केतने महीना ले रहेके परी
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ ३ ॥

जब नव-वधू ससुरालमें जाती है तब वहाँ भूख रहते हुए भी वह कम खाती है—लाज और संकोच वश। वह सोचती है एक-दो ग्रास खाकर वहाँ रातो दिन रहना पड़ेगा। भूखकी ज्वाला शरीरको जलाती रहेगी। भोजनके पहले और बाद थालीकी जाँच करनेके लिए पड़ोसकी माताएँ और बहिनें बुलाकर लाई जायँगी। यदि कुछ अधिक खा लिया जाय तो माता-बहनें बदनाम करेंगी और कहेंगी कि 'इसके खानदानकी यही रहनी है; इसीलिए यह लड़की अधिक खानेवाली और पेटू है' इसी दुर्दशामें कितने ही महीनोंतक रहना पड़ेगा, मानों इसी दुःखसे नव-वधू डोलीमें रोती जाती है ॥ ३ ॥

जाँचेके हमार मन सासु धरि दीहें कबें
हमरा बिस्तराका लगे लड्डू आ बुनियाँ
कुक्कुरो बिलारि मूस आके खाइ जाई तब
उल्टे घुमाई लोग हमारे पर घनियाँ
हँसि हँसिके बानी कहीं बिगिहें जेठानी आ
सासु कहि दीहें ई त बड़ी बा चटनियाँ
हमरा सफाईके रही ना सुनवाई कहीं
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ ४ ॥

कभी-कभी हमारा मन परखनेके लिए—यह चटोर है या संयमी—इसकी जाँच करनेके लिए सासजी मेरे बिस्तरके पास लड्डू और बूंदिया रख देंगी। यदि कुत्ता, बिल्ली या चूहे भी उसमेंसे कुछ खा जायँगे तो भी लोग उलटे मुझपर ही घानी घुमायेंगे। मुझपर ही सारा दोष मढ़ देंगे। कहीं जेठानीजी हँस-हँसकर बानी फेंकेगी—व्यङ्गबाण मारेंगी और सासजी कहने लगेंगी—यह तो बड़ी चटनी—या चटोर है। मेरी ओरसे सफाईके लिए—अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनेके लिए कहीं सुनवायी नहीं होगी—मानो इसी दुःखसे डोलीमें वहू रोती जाती है ॥४॥

ओठर सासु दीहें कि "एकरा नैहरवासे
आइल कबें ना तनि ढंगसे करनियाँ
एकर खन्दान जरिएके भिखमंगा हवे
करनी ना कौनो, बस खाली बा कथनियाँ
एकरा महतारीके फूआ बियाहलि रहे
हमरा मौसीका घरे पाँड़ेका जमुनियाँ
जानि गैनी एकरासे घर ना हमार चली"
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ ५ ॥

सासजी ओठर देंगी—हमारो निन्दा करती हुई चोट करनेवाली बात कहेंगी कि 'इसके नइहर (मायके) से कमी ढंगसे करनी—उपहार-सामग्री नहीं आयी। इसका खानदान मूल पीढ़ीसे ही भिखमंगा है। इसके घरवालोंमें कुछ करनी नहीं, केवल कथनी है। इसकी माँकी बुआका ब्याह 'पाण्डेकी जमुनिया' गाँवमें मेरी मौसीके घर हुआ था। मैं जान गयी, इससे मेरा घर नहीं चल सकेगा।' संभवतः इसी दुःखसे डोलीमें बैठी नव-वधू रोती जा रही है ॥ ५ ॥

आजु जात बानी बंद होखे एक जेल बीच
जेलर जहाँके सासु नन्दी आ जेठनियाँ
हमके दिनरात डेरवैंहें धमकैंहें ऊ
लंकामें जानकीके जइसे रकसिनियाँ
दुइ चारि सालके न बाटे जेलके ई सजा
जेलेमें बीती अब सउँसी जिन्दगनियाँ
कौनो अदालत सुनी एकर अपील नाहीं
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ ६ ॥

आज मैं एक ऐसे जेलखानेमें बन्द होने जा रही हूँ जहाँके जेलर सास, ननद और जेठानी हैं। वे लोग मुझे रात-दिन उसी तरह डराये-धमकायेंगी; जैसे लंकामें राक्षसियाँ सीताको डराती धमकाती थीं। मेरे लिये जेलकी यह सजा दो-चार सालके लिए नहीं हुई है। मुझे अपनी समूची और लंबी जिन्दगी उस जेलमें ही गुजारनी पड़ेगी। कोई भी अदालत इसकी अपील नहीं सुनेगी! इसी दुःखका विचार करके नव-वधू डोलीमें रोती जा रही है ॥ ६ ॥

चोरी चुँगुलाई हम आजु ले न कैनी कहीं
तुरनी ना कौनो सरकारके कनुनियाँ
कौन बटे कौन दफा लागू बा हमरा पर
एकर ना पौनी हम आजु ले समनियाँ
एकहू गवाही ना गुजरल विपक्षमें बा
केहूसे न बाटे हमरासे दुशमनियाँ
बे कसूर हमके दियात जेल बाटे आज
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ ७ ॥

मैंने आजतक कहीं किसीकी चोरी-चुगली नहीं की। सरकारके किसी कानूनको नहीं तोड़ा। मुझपर कितने बटा कितना दफा लगाया गया है, इसको जाननेके लिए अबतक मुझे कोई समन नहीं मिला है। मेरे विरोधमें एक भी गवाही नहीं गुजरी है। किसीके साथ मेरी दुश्मनी नहीं है। आज मुझे विना कसूरके जेलकी सजा दी जा रही है।—इसी दुखसे डोलीमें बैठी नववधू रोती जाती है ॥ ७ ॥

काल कोठरी समान होई जेलखाना उहाँ
जहाँ पैसि पाई ना प्रकाशके किरिनियाँ
डेढ़ पोरसा पै कहीं जंगला एक होई त
सासु उहाँ साजि दीहें झाँपी और मोनियाँ
जेठो बैशाखमें न सींड़ सूखत होई जहाँ
धूआँसे भरल घर होई कहीं कोन्हियाँ
चौकठका भीतरे रहेके परी आठो घरी
एहो दुखें डोलोमें रोवति जाति कनियाँ ॥ ८ ॥

वहाँ (ससुरालमें) कालकोठरीके समान जेलखाना होगा, जहाँ प्रकाशकी किरण नहीं प्रवेश पा सकेगी। उस घरकी दीवारमें एक मनुष्यसे डेढ़गुनी ऊँचाई पर यदि कोई जँगला-झंरोखा होगा भी तो सासजी वहाँ झाँपी और मोनिया (मूंज और सींकसे बनाये गये बड़े-बड़े पात्र) सजाकर रख देंगी। जेठ और वैसाखमें भी जहाँ सिलन नहीं सुखती होगी, जो धुएँसे भरा होगा, ऐसा कहीं कोई कोनेका घर मेरे लिए खाली रखा होगा। आठो पहर वहाँ मुझे चौकठके भीतर ही रहना पड़ेगा—मानो इसी दुखसे डोलीमें बैठी नववधू रोती जाती है ॥ ८ ॥

लेबेके साँस ना बतास ताजा पाइबि हम
ओढ़ेके परिहें कई पर्तके ओढ़नियाँ
कहियो त गोड़ बड़ा जोर झिन्झिनाए लगो
कहियो दुखाए अगिआए लगी चनियाँ
डाक्टर कही कि कम भैल बा भिटामिन बी॰
नैहरके भूत कही ओझा और गुनियाँ
केकर जवाब कौन कैसे दे पाइबि हम
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ ९ ॥

मैं वहां साँस लेनेके लिए ताजी हवा नहीं पाऊंगी, कई पर्तकी ओढनी या चादर ओढ़कर मुझे रहना पड़ेगा। किसी दिन पैर जोर–जोर झन्नाने लगेगा, कभी चाँद (सिरका ऊपरी भाग) दुखने और जलने लगेगा। डाक्टर लोग बतायेंगे कि 'इसके शरीरमें बिटामिन बी. की कमी हो गयी है।' ओझा, सोखा या गुनी लोग इसीको नैहरका भूत कहेंगे। मैं किस की बातका क्या जवाब कैसे दे पाऊँगी ? मानो इसी दुखसे डोलीमें नववधू रोती जा रही है ॥ ९ ॥

हमके सौंपि देले बा माई बाप जेकराके
जेकर रहेके बाटे बनिके परनियाँ
उनहूँसे बोलतमें देखि लीहें सासु कहीं
खीसिन बनि जैहें ऊ बनके बघनियाँ

कहिहें कि कैसनि कुरहनी ई आइलि वा
एकरा नजरमें वा तनिको ना पनियाँ
केहू कही अब्बेसे आपन ई चीन्हे लगलि
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ १० ॥

मेरे माता-पिता मुझे जिसके हाथमें सौंप चुके है, जिनकी परानी वन कर मुझे रहना है, उनसे भी कभी वात करते यदि सास जी देख लेंगी तो क्रोधके कारण जंगलकी वाघिन वन जायगी। कहेंगी कि 'यह कैसी कुलच्छनी आगयी है। इसकी नजरमें जरा-सा भी पानी (तनिक भी लज्जा) नहीं हैं।' कोई कहेगा 'यह अभीसे अपना-पराया पहचानने लगी है।'—मानों इन्हीं सब दुखोंसे डोलीमें नववधू रोती जाती है ॥ १० ॥

छूटि जात वाटे आजु हमरासे माई बाप
छूटि जात बाटे आजु भाई आ बहिनियाँ
काका और काकीके न आँखी देखि पाइबि हा
छूटि जात नैहरके नावें जगरनियाँ
वारी फुलवारी सखियारी सब छूटि जात
सपना समान भैल नैहरके दुनियाँ
माई और वापके रोवाई वा न बन्द होत
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ ११ ॥

आज मुझसे मां-वाप छूट रहे हैं, कई वहनें छूटी जा रही हैं। काका और काकी (चाचा और चाची) को अव मैं आंखसे नहीं देख सकूंगी। मायकेका 'जगरानी' नाम भी यहीं छूटा जाता है। बाग-बगीचा, फुलवारी सखी-सहेली सब छूट रही हैं। नैहरकी दुनियाँ अब स्वप्नके समान हो गयी। माता-पिताकी रुलाई वंद नहीं हो पाती है—मानो इसी दुःख और सोचसे डोलीमें वैठी नववधू रोती-जा रही है ॥ ११ ॥

बखरा हमार पिता देले जे दहेज मानि
किन्तु वाटे ऐसन समाजके चलनियाँ
कौना मसक्कतसे रुपया ई जुटावल वा
ई ना लोग बूझेला समुझेला मँगनियाँ
केहूका विदाई मिले केहूका पुजाई मिले
केहू नेग खातिर बा चढ़ि जात छन्हियाँ
लूटे आ लुटावेके हमरे धन वाटे इहे
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ १२ ॥

पिताजी तो दहेज समझकर मेरा हिस्सा दे रहे हैं किन्तु समाज की ऐसी चलन है कि कोई यह नहीं समझता कि कितनी कठिनाई या श्रमसे ये रुपये जुटाये गये हैं, सब

इसे मंगनीकी चीज मान रहे हैं। किसीको विदाई मिले किसीको पुजाई मिले, कोई नेगके लिए छप्पर पर चढ़ जाता है। हमारा ही यह धन लूटने-लुटानेके लिए मौजूद है—यही सोच कर दुःखके मारे नववधू डोलीमें रोती जाती है ॥ १२ ॥

बाप और दादा जौन सम्पति कमाइ गैंले
औरी जे छोड़ि गैंले उनहूँके पुरनियाँ
सगरी दियाइल ह तब्बो ना ओराइल ह
तिलक दहेज वाला किश्त सोरहनियाँ
बेटहाका घरमें ना हाय! रहि पावल ऊ
लूटेले ओहूके नचनियाँ आ बजनियाँ
रोकेके लूट ई अधिकार ना हमार बाटे
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ १३ ॥

बाबा-दादा जो सम्पत्ति कमा गये हैं, उनके पुरखे-पुरनिये भी जो धन छोड़ गये हैं; वह सब दे दिया गया हैं; तब भी तिलक दहेजकी पूरी किस्त समाप्त नहीं हुई है। बेटे वालेके घरमें भी वह धन नहीं रह पाता है। खेद है कि उसे भी नाच और बाजे वाले लूट लेते हैं। इस लूटको रोकनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है—मानो यहीं सोचकर नववधू डोलीमें रोती जा रही है ॥ १३ ॥

चौदहे बरीस घर राम छोड़ि दिहले त
पोथीके पोथी लोग लिखले बा कहनियाँ
जन्मभूमि छोड़ि देत बानी आजीवन हम
माथ पै चढ़ाके माई बापके बचनियाँ
हमरी बेर बाकी त दुकाहें दों सूखि गैल
बालमीकि व्यास कालिदासके कलमियाँ
हमरा ए त्याग पै लिखाइल ना ग्रन्थ एको
एही दुखें डोलीमें रोवति जाति कनियाँ ॥ १४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी चौदह वर्षके लिए घर छोड़कर वनमें गये थे, इसके लिए लोगोंने पोथेका पोथा लिख डाला। मैं माँ-बापके बचनको शिरोधार्य करके जीवन भरके लिए अपनी जन्म-भूमि छोड़ देती हूँ परन्तु मेरी बारी आयी तो न जाने क्यों वाल्मीकि, व्यास और कालिदासकी भी कलम सूख गयी। मेरे इस त्याग पर एक भी ग्रन्थ नहीं लिखा गया है—मानो इसी दुःखसे डोलीमें बैठी कनिया (नववधू) रोती जा रही है ॥ १४ ॥

॥ इति शम् ॥

कुवलयापीडकी प्रीति

श्रीकृष्णके चरणोंमें

श्रीनागेश्वर सिंह 'शशीन्द्र' 'विद्यालंकार

★

(१)

उस दिन एक एक यादव समासद संध्यामें ही चुपचाप वसुदेवके राजमहलमें कुछ मंत्रणाके लिए चले आये थे। अति सशंकित और चौकन्नी होकर धीमी आवाजमें वे सब आपसमें बातें कर रहे थे। किसीने मथुरासे शीघ्र ही भाग जानेकी सलाह दी तो किसीने अंततक डटे रहनेका परामर्श दिया।

फिर अक्रूरको चुप देख वसुदेवने कहा—'अक्रूर आप क्यों चुप हैं?' मथुराको आज आपकी सलाहकी आवश्यकता है।'

अक्रूरसे सलाह माँगी गयी तो उन्होंने बड़े विनीत भावसे कहा—'महाराज! आप जानते नहीं क्या? अब हमारी रक्षाकी चिन्ता हमें नहीं करनी है। हमारी रक्षाके लिए देवकीका पुत्र मथुराकी धरतीपर आ पहुँचा है और अब देवर्षि नारदकी वह भविष्यवाणी भी सत्य होनेवाली है। उनकी वाणी असत्य कभी नहीं हो सकती।'

'नहीं भैया, नारदकी भविष्यवाणी सत्य ही होगी, यह कौन कह सकता है? औरआपको उसपर विश्वास है पर मुझे नहीं।' एक तरुण समासदने ऊँची आवाजमें कहा।'

अक्रूरकी भंगिमा बदल गयी। उन्होंने अपनी बातोंपर जोर देते हुए कहा—भूलते हो सभ्य, उस परमब्रह्मके अवतारकी बात, उस ओर तुम्हारी दृढ़ प्रतीति नहीं है, इसीलिए विश्वास नहीं कर पा रहे हो। लेकिन हमारा वह तारणहार आ गया है। देर भले हो पर वहाँ अंधेर होनेको नहीं।'

फिर अक्रूरकी बातोंपर दूसरे समासदोंकी भी यही प्रतीति रही। एकने पूछा—'और देवकीका पुत्र तारणहार नहीं हुआ तो फिर हमारा क्या होगा? नराधम कंसकी गुलामी! इसलिए मेरा विश्वास है कि 'जैसा आप सोच रहें हैं वैसा कुछ नहीं होनेको है।'

अक्रूरकी वाणी धीमी पड़ गयी। उन्होंने कहा—'समासदों! विश्वास करो, वह हमारा तारणहार है। अभी कलही उसने त्रिवक्राको रोगमुक्त किया है। दिव्य धनुषको

क्षणोंमें तोड़नेवाले श्रीकृष्णके उस ब्रह्ममय रूपको क्यों भूलते हो ? इससे अधिक आश्वासन तुम्हें कौन देता है ?'

अक्रूर सभासदोंके बीच बोल ही रहे थे कि उसी समय दो और व्यक्तियोंने राजमहलमें प्रवेश किया। सभी चुप हो गये। आगन्तुककी ओर देखने लगे। इतनेमें सबने एक गहरी आवाज सुनी—'सभासदों, आज देवकी भी आप सबको अपनी प्रतिज्ञा सुनाने आयी है।'

देवकराजकी पुत्री देवकी उस दिन देवीकी तरह लग रही थी, उसका तपोमय रूप सभासदोंको चकाचौंधमें डाल रहा था। राजमहलकी रोशनीके नीचे खड़ी देवकी का मुख एक स्वर्गीय आभासे प्रदीप्त था। चुप रहकर भी वह कुछ बोलना चाहती थी—सभ्यगण, कुलकी ललना आपके समक्ष बोले, यह शोभाकी बात नहीं, लेकिन जब कुछ कहनेका समय आया है तो चुप रहना भी ठीक नहीं। मैंने निश्चय किया है कि 'यदि इसी तरह मेरे पुत्रोंकी हत्या होती रही तो मैं सबके सामने ही अग्निमें प्रवेश करूँगी और आप लोग उसे अपनी आंखों देखेंगे।'

देवकीकी बात सुनकर सभी सरदार चुप हो गये पर अक्रूरसे नहीं रहा गया। उन्होंने कहा—'देवकी ! तुम्हारे पुत्रोंकी हत्या इसी तरह हो, इससे पहले हम सब मर मिटेंगे। यह मेरी भी प्रतिज्ञा है। जाओ !' देवकी सबके सामनेसे चली गयी। अक्रूरका प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे मंजूर था। उनका वह दृढ़ निश्चय सांसदोंको मंजूर हो गया था। सभी सांसद आधी रातको अपने-अपने घर लौट गये।

(२)

उधर कंसकी चिन्ता और बढ़ रही थी। दिन-रात उसकी चिन्ता उसे ही खाती जा रही थी। रातके समय कभी सोता कभी राजमहलकी छतरीपर उन्मुक्त आकाशके नीचे शांतिके लिए आता तो वहाँ उसकी चिन्ता और बढ़ जाती। उस रात उसकी चिन्ता बढ़ती ही जाती थी कि इतनेमें उसका भाव बदला—उसने सोचा 'अभी बिगड़ा ही क्या है ? आज वसुदेवके पुत्रोंके नाशका ही उपाय किया जायगा। ग्रामवासियोंके साथ वह यहाँ रह रहा है। उस छोटेसे छोकरेकी चमत्कारी कथा सुन-सुनकर दलके दल मथुरावासी उसे देखनेके लिए आए हैं। पता नहीं क्यों लोग उसे अपना उद्धारक, मान रहे हैं। ईश्वरका अवतार मान रहे हैं। अपनी नैयाका खेवनहार मान रहे हैं। 'ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता।' कह रहे हैं।'

रात्रिके उस गहन अन्धकारमें कंसकी चिन्ता तब कम हुई जब उसे अंगारक और कुवलयापीडकी बात याद आयी। कल कुवलयापीडके पैरों तले उसे रौंदा जायगा। रौंदे जानेपर लोग ईश्वर और उद्धारकी बात भी भूल जायेंगे। फिर नारद की वह भविष्यवाणी भी असत्य हो जायगी।'

आधीरातको आशाकी हल्की रेखाके अङ्कमें कंस सो गया। नींदमें वह सुखकी साँस लेता रहा। रंग-बिरंगे सपने देखता रहा। कृष्णको कुवलयापीडके पैरोंके बीच पड़ा देख कंस स्वप्नमें बाँसों उछल रहा था। सुबह होते ही उसने स्वयं राजमहलका घण्टा बजाया। बन्दी और चारण उसकी स्तुतिमें लीन हो गये। फिर सेवकोंका दल आया। त्रिवक्रा आयी। लँगड़ी

कुरूपा त्रिवक्रा उस दिन गंधर्वबधू-सी लग रही थी। ऐसा चमत्कार देखकर कंसने पूछा—त्रिवक्रे! यह क्या ? मुस्कराती हुई त्रिवक्रा बोली—'महाराज उस लड़केकी कृपासे अब मैं बिलकुल अच्छी हूँ।' फिर क्या था जल्दी-जल्दी कंस सभी श्रृंगार-साधनोंसे युक्त हो त्रिवक्राको बिदा कर, अंगारकको पास बुलाया—'अंगारकको निकट आते देख कंस उससे गले मिला और बोला—'भैया ! कुवलयापीडके द्वारा आज ऐसा चमत्कार दिखलाओ, जैसा आजतक किसीने नहीं सुना है। किसीने नहीं देखा है।'

कुछ देर बाद फिर घण्टे पर चोट पड़ी, कंसके सारे पहलवान मैदानमें आ डटे। चाणूर और मुष्टिक भारी भरकम शरीर लिये यादव सरदारोंके लिए असह्य हो गये। तबतक कुवलयापीड भी रंगभूमिमें लाया गया। अंगारक उसपर बैठा था।

लेकिन यह क्या कुवलयापीड धीरे-धीरे अपनी मस्ती छोड़ रहा था। उसकी आँखे आज किसीकी आराधनामें तल्लीन हो रही थीं। वह सतत मगन हो आकाशकी ओर देख रहा था। तबतक कृष्ण और बलरामका भी आगमन हुआ। कंस मन ही मन मचल पड़ा। कृष्ण और बलराम कुछ ही क्षणोंके बाद कुवलयापीडके पैरों तले रौंदे जायँगे।' इसकी कल्पनाकर वह आनन्दविभोर हो उठा। उसी क्षण कंसने देखा कि कृष्ण और बलराम गजराजके निकट खड़े हैं। कंसकी सांस रुक गयी वह देखना चाहता था कि दोनों यादव-कुमार मौतके ग्रास बनें। उन दोनों युवकोंके आनेपर कुवलयापीडने उन्हें कुछ देर तक रोका फिर कृष्णका स्पर्श पाते ही गजराजका क्रोध ठंढा पड़ गया। कृष्णकी वह बांसुरी गजराजसे सट गयी थी। कृष्ण पुनः गजराजके फँदेसे निकल जाना चाहते थे, लेकिन कुवलयापीडने फिर रास्ता रोका। इस बार उसका रास्ता रोकना सबको बड़ा विचित्र-सा लगा। उसने सूंड से श्रीकृष्णके चरणोंको स्पर्श किया। मस्तकको सूँघा। अब वह क्रोधरहित दिखलाई पड़ रहा था। मारनेके बदले श्रीकृष्णसे खेलता रहा। बलरामके बदनसे लिपटता रहा। ऐसा लग रहा था कि कुवलयापीड उन युवकोंका पालतू है। हाथी सूँड बढ़ाकर श्रीकृष्णको आकाशकी ओर उठा लिया। यादव सरदार हाय-हाय करने लगे। कंसके शरीरमें एकबार फिर प्राणकी बिजली दौड़ गयी। लेकिन उस मधुर क्षणमें उस विशाल पशुने श्रीकृष्णको फिर पढ़नेकी कोशिश की। उसने भी उसे उद्धारकके रूपमें खड़ा पाया। फिर सबके सामने सूँडको नीचेकी ओर कर श्रीकृष्णको धरतीपर खड़ाकर दिया और सूँडको चरणोंसे सटा लिया। यादवोंने तुमुल हर्षध्वनिकी।

श्रीकृष्णचन्द्रजी जय ! भैया बलरामकी जय !!

मधुर-स्मृति—

व्रजलीला

पुजारी श्रीगुरुशरण दास

★

आनन्दकन्द व्रजचन्द पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णकी अखण्ड अलौकिक अविनाशी एवं आनन्दमयी व्रजकी लीलाका वर्णन करना इन्द्रके समक्ष स्वर्गका वर्णन करनेके तुल्य है। किन्तु वह आनन्दकन्द पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णकी व्रजलीला अपरम्पार है और अत्यन्त मनोहर, चित्ताकर्षक, पतितपावन एवं इस नश्वर जीवनको सार्थक बनानेवाला एकमात्र परम-पवित्र प्रभुका खेल है।

अतएव इस तुच्छ लेखनी द्वारा यह गुरुप्रसादस्वरूप छोटा-सा निबन्ध श्रीकृष्ण-सन्देशमें प्रस्तुत करता हूँ 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये !'

श्रीकृष्णकी व्रजलीलाके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतके स्कन्ध १०–४६–२२ में वर्णन है—

सरिच्छैलवनोद्देशान् मुकुन्दपदभूषितान्।
आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम्॥

यह वही सरिता [नदी] है। जिसमें श्रीकृष्ण महाराज जलक्रीड़ा करते थे तथा यह वही गिरिराज है जिसे वे एक अंगुष्ठसे उठाते थे। यह वही वनप्रदेश है जहाँ श्रीकृष्ण महाराज गैयाँ चराते, मुरली बजाते एवं यह वही जगह है जहाँ वे सखियोंके साथ नाना प्रकारके खेल खेला करते थे। अभी भी उनके चरण-चिन्ह दिखाई दे रहे हैं; यह सब देखकर हमारा मन कृष्णमय हो जाता है। अहो ! कैसा सुन्दर वर्णन है ! श्रीकृष्णजीकी गोकुलमें जो ग्यारह वर्ष और बावन दिनकी लीला हुई है, यही उनकी व्रजलीला एवं बाल-लीला है। वे बालकृष्ण एक अलौकिक पुरुष हैं, जिनकी माधुर्य-लीलाका वर्णन करते हुए स्वामी श्रीप्राणनाथजी महाप्रभु अपनी वाणीमें लिखते हैं 'सुन्दर बालक मधुरी बानी, घर ल्याये गोद चढ़ाये, सेज्याये खिनमें प्रेमे पूरे सुख देवे चित चाहे।'

'सुन्दर सकुमार बालक है उनकी तोतली-सी बोली, सबको मधुर लगती है। अतः गोदमें बैठाकर घर ल्याते हैं तो वे अष्टसिद्धि नवनिधिके दाता तो हैं ही, सबको प्रेम विभोर

कर देते हैं।' फिर आगे कहते हैं 'व्रजसारी करी दिवानी, और पिया तो विचक्षण, जहाँ मिले ताहीं यहीं बातें विनोद, हाँस, रमण।,

प्यारे श्रीकृष्ण बड़े ही चतुर हैं, सबको प्रेममें पागल बना देते हैं, और उनकी प्रेममय लीला अलौकिक है। स्वामीजी और भी कहते हैं—"वृज वधु मिने खेलने संग केतिक जाय, साँवरो इत दान लेने करे आड़ी लकुटी ताये"। जब व्रजाङ्गना दधी माखन बेचने जाती थी तो यहाँ श्रीकृष्ण अपनी लकुटीसे मार्ग अवरुद्ध करते थे और कहते थे "लावो दहीका कर अर्थात् दान" आदि। इस प्रकार यहाँ दानलीला इतनी मनोहर होती थी कि सबके सब उसीमें मगन हो जाते थे। यही थी अहर्निश व्रजलीलाकी रम्यता।

"व्रजलीला अति मोटी छे, जो जो नरसैंया वचन प्रमाण" स्वामी प्राणनाजी महाराज कहते हैं कि—व्रजकी लीला अत्यन्त बड़ी है, इस प्रेम भरी लीलाका वर्णन भक्त नरसिंह मेहताके उद्गारसे समझना चाहिए।

'व्रजनरसैंये प्रगट कीधी घणु वचन विवेक'! व्रजकी परम पावन पवित्र लीलाका वर्णन करनेमें कौन ऐसे महापुरुष हुए जो पीछे रहे हों; स्वामी श्रीप्राणनाथजी महाराज सतगुरु श्रीदेवचन्द्रजीके प्रति श्रद्धा प्रेम प्रगट करते हुए कहते हैं 'व्रज तणी लीला कही वालीशे के रास' सतगुरु देवचन्द्रजी महाराजने चौदह वर्ष पर्यंत निष्ठावंध भागवत श्रवण करनेके पश्चात् आपको सभी व्रज-रासलीलाकी जानकारी हुई। अतः देवचन्द्रजी महाराजके परम शिष्य स्वामी श्रीप्राणनाथजीके प्रति अपनत्व रखते हुए प्रत्यक्षरूपसे व्रजलीलादिकी शिक्षा देते हैं। नन्दबाबाका ग्राम जमुनाजीके तटपर अत्यन्त शोभा देता था। टींबा (टेकरी) के उपरमें नन्दकी वस्ती शोभायमान है। इसी बीचसे गौधनका आने-जानेका मार्ग था। नन्दजीके पूरे-के ठीक पूर्व तरफ जमुनाजी कल-कल-निनाद करती निर्मल जल लिये हुए बहती हैं। सम्पूर्ण अरण्यसे सुशोभित यह व्रज!

नन्द यशोदा ग्वारु गोपी धेनुवच्छ जमुनावन।
थीर चर सब पशु-पन्खी नीत-नीत लीला नौतन॥

नन्दबाबा तथा यशोदामाता एवं गोप-गोपियाँ गौवें तथा बछड़ें यमुना नदी तथा अरण्यादि जड़ चेतन यहाँके सभी ही पदार्थ अखण्ड अविनाशी हैं। अतएव नित्यप्रति नई-नई लीलासे सुशोभित है यह व्रज! वही पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण व्रजका एक चमकता हुआ सितारा है और यही भारतीयोंका एकमात्र आत्माधार पतितपावन दीनदयालु करुणाका सागर है।

'पादरेणुर्न लभ्यते' कितनी तपस्या करनेपर भी श्रीकृष्ण और गोप-ग्वालोंकी पदरज सुरदुर्लभ हुई है। अतः आज मानवमात्रको सहज ही यह वस्तु प्राप्त है। यह अखण्डनिधि हमारी है। इनके चरण-कमलमें लीन हो शाश्वत सुखका अनुभव करना भारतीय मात्रका पुनीत कर्तव्य है।

●

श्रीकृष्णजन्म-महोत्सव पर
आयोजित श्रद्धाञ्जलि-समारोहमें

श्रीश्रीनारायणजी चतुर्वेदीका

उद्घाटन-भाषण

★

मैं इसे अपना परम सौभाग्य समझता हूँ कि पूर्व जन्मके किसी सुकृतके फलस्वरूप मुझे इस पवित्र स्थलपर इस पुनीत उत्सवमें सम्मिलित होनेका अवसर मिला है। मैं आप सब मित्रोंको इसके लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

आज हम जिस स्थानपर एकत्र हुए हैं, वह ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और धार्मिक दृष्टिसे अत्यन्त पवित्र है।

यों तो जमुना तीर सकल थल ही हैं सुन्दर,
पै तिनमें मधुपुरी और हू है सुन्दरतर।
ताहूमें यह जन्मभूमि अतिसय सुखरासी,
जहाँ अवतरे कृष्ण रूप धरि हरि अविनासी॥

भागवतकारने भगवान्‌के जन्मका वड़ा मनोहर और चित्ताकर्षक वर्णन किया है। पण्डित-मण्डली और भगवत-रसिक उससे अक्षय आनन्द प्राप्त करते हैं। हिन्दीके प्रसिद्ध कवि देवने भी उस शुभ घटनाके सम्बन्धमें कहा था—

सूनोंकै परम पद, ऊनोंकै अनन्त मद,
दूनोंकै नदीस नद इन्दिरा फुरै परी।
महिमा मुनीसनकी, सम्पति दिगीसनकी,
ईसनकी सिद्धि व्रज-वीथी विथुरै परी॥
भादोंकी अन्धेरी अधराति मथुराके पथ,
पाइ मनोरथ देव देवकी दुरै परी।
पारावार पूरन, अपार परब्रह्मरासि,
जसुदाके कोरै इक वारक कुरै परी॥

आप सब जानते हैं कि अत्याचारी कंससे बचनेके लिए वसुदेव शिशु कृष्णको गोकुल ले गये थे। नन्दको भ्रम हुआ कि वे उन्हींके पुत्र हैं, और उन्हें जो आनन्द हुआ और जिस प्रकार उन्होंने यह जन्मोत्सव मनाया, उसका वर्णन भी महाकवि देवने इस प्रकार किया है—

राखी न कलप तीनों काल विकलप मेंटि,
कीन्हों संकलप पै न दीनों जाँचकन जोखि।
नाग नर देव महिमा गनत सुनन्द जूकी,
माँगन जु आयौ, सो न आँगन तै गया रोखि॥
दए सब सुख, गये बन्दी नविमुख 'देव'
पितर अनन्दी भये नन्दीमुख मख पोखि।
घरन घरन सुर घरनि सराहैं सबै,
घरनिमें धन्य नन्द घरनि तिहारी कोख॥

और भगवान्के जन्मका यह आनन्दातिरेक भारतकी धर्मप्राण जनताके लिए कभी कम नहीं हुआ। सारा भारत तभीसे भगवान्के इस जन्मदिनको उल्लास और श्रद्धासे मनाता आ रहा है, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अलौकिक लीलाओंसे ब्रजवासियों और उनके सारे हिन्दू-समाजको आनन्दित ही नहीं किया, किन्तु इसलिए भी कि उन्होंने अनेक अत्याचारियों और अनाचारियोंको समाप्त कर जनताको मुक्ति दी। भारतवासी इससे भी अधिक भगवान् श्रीकृष्णके पार्थसारथि रूप और उनकी गीताके शाश्वत सत्यके उपदेशसे अनुप्राणित हुए। भारतीय जनताको आशा और अभयका आश्वासन मिला; क्योंकि भगवान्ने श्रीमुखसे कहा था—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

और उन्होंने 'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन' का सिद्धान्त प्रतिपादन करके निष्काम कर्म और कर्तव्यपालनका उपदेश देते हुए कहा था—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

और अन्तमें आकुल मानवताको आश्वासन देते हुए उन्होंने उसे अपनी स्निग्ध छायामें आनेके लिए आवाहन करते हुए कहा था।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

भगवान श्रीकृष्णकी श्रीमद्भगवद्गीता इसीलिए हिन्दू-समाजका सर्वाधिक प्रचारित, ग्राह्य और स्वीकृत धर्मग्रन्थ है। भगवान शंकराचार्य और भगवान रामानुजसे लेकर आधुनिक

कालमें लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी तथा आचार्य विनोवा भावे तकने उससे प्रेरणा ली और उसका भाष्य किया। उसमें ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और अनासक्तियोग—समीका उपदेश और समन्वय है। भगवान श्रीकृष्णके चरित्र और उपदेशोंने हिन्दू-समाजको उसका दर्शन, उसका माधुर्य और उसका रूप दिया। यदि श्रीमद्भगवद्गीता लुप्त हो जाय तो भारतकी धर्म और अध्यात्मकी नौका बिना पतवारके हो जायगी। इसलिए यह आश्चर्यकी बात नहीं कि उसके प्रणेताका जन्मदिन हमारे सामाजिक, राष्ट्रीय और धार्मिक जीवनमें इतना महत्त्वपूर्ण और पवित्र माना जाता है। हमारा परमसौभाग्य है कि हम उसी पवित्र दिन मथुरा-नगरीमें उन्हींके पावन जन्मस्थानपर मिल रहे हैं।' मथुराके सम्बन्धमें मथुरा-माहात्म्यमें भगवानने कहा है—

> अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः पुरीं मदीयां परमां पुरातनीम्।
> सुरेन्द्रनागेन्द्रमुनीन्द्रवन्दितां मनोरमां तां मथुरां सनातनीम्॥

वास्तवमें मथुरा सनातन नगरी है। कोई नहीं कह सकता कि वह कब स्थापित हुई। त्रेतायुगमें तो वह मौजूद थी ही। उस समय लवणासुरने अपने पिता मधुके नामपर उसका नाम मधुपुरी रख दिया था। प्राचीन ग्रन्थों और साहित्यमें उसके अनेक नाम मिलते हैं। मथुरा, मथुला, मधूरा; मधुपुर, मधुपुरी, मधूषिका, मधूपघन् आदि नामोंसे विभिन्न हिन्दू बौद्ध और जैन लेखकोंने उसका वर्णन किया है। ग्रीक लेखकोंमें से एरियनने यमुनाको 'जोवरस' तथा टालमीने उसे 'मोदूरा' लिखा है। फाहियान और ह्वेनसांग आदि चीनी यात्रियोंने भी उसे विचित्र नाम दिये हैं। अँग्रेजोंने भी 'मथुरा'को बिगाड़कर 'मट्रा' करनेका दुःसाहस किया था। औरंगजेबने इसे नष्टकर इसका नाम इस्लामाबाद रख दिया था। किन्तु 'मथुरा सनातनी' आज भी अपने प्राचीन नाम ही से विख्यात है।

इस पुरातन और सनातन नगरीका आरम्भिक इतिहास ऐतिहासिक क्षितिजके घने कुहासेमें छिपा हुआ है। किन्तु चन्द्रवन्शी राजाओंसे आरम्भकर इक्ष्वाकीय सूर्यवंश, मौर्य, शुंग, यवन (ग्रीक) मित्रवंश, शक, कुषाण, नाग, गुप्त, हूण, हर्ष, प्रतीहार, गाहड़वाल, गुलाम, तुगलक, खिलजी, सैयद, लोदी, सूर, मुगल, जाट, मरहठा आदि वंशोंका शासन यहाँ रहा और अन्तमें इसपर अँग्रेजोंका आधिपत्य हुआ। यह यादव वंशके वाद कुषाणोंके समयमें फिर विशाल राज्यकी राजधानी हुई। वह भारतीय कला और संस्कृतिका केन्द्र बन गई। बहुत कम लोग जानते हैं कि कुषाण कालके पहले बुद्धकी मानवी प्रतिमाएँ नहीं बनायी जाती थीं। उन्हें चक्र, वृक्षों आदिके प्रतीकों द्वारा दिखलाया जाता था। मथुराके कुषाण बौद्ध राजाओंने पहिली बार बुद्धकी मानवी प्रतिमाएँ बनवायीं जिनके कुछ उच्चकोटिके नमूने स्थानीय म्यूजियममें देखे जा सकते हैं। हमारा अनुमान है कि मथुरामें भगवान वासुदेवके मन्दिरोंमें भगवानकी जो प्रतिमाएँ कुषाण-सम्राटोंने देखीं, उन्हींसे प्रेरणा लेकर उन्होंने बुद्धको मानवी रूपमें अंकित करना आरम्भ किया था। बौद्धधर्मको बुद्धकी मूर्तियां बनानेकी प्रेरणा इसी नगरीमें भगवान् वासुदेवकी मूर्तियोंसे मिली। यह बौद्धधर्मको भागवत-धर्मकी देन है।

अपने वैभव, अपनी संस्कृति, अपनी कला और सबसे अधिक भगवान् श्रीकृष्णकी जन्म-भूमि होनेके कारण मथुराकी ख्याति देश और विदेशोंमें दूर-दूर तक फैल गई थी। कालान्तरमें उसकी यह ख्याति उसके लिए अभिशाप हो गयी। सैनिक सुरक्षाकी दृष्टिसे उसकी भौगोलिक स्थिति विषम थी। भारतकी दो मध्यकालीन राजधानियों दिल्ली और आगराके बीचमें होनेके कारण और निकटमें सुरक्षाका कोई प्राकृतिक अवरोध न होनेके कारण वह विदेशी आक्रमण-कारियों, लुटेरों और आततायियोंके लिए सबसे सरल शिकार बन गयी। अन्य हिन्दू-तीर्थ सोमनाथ, काशी, अयोध्या, गया आदि अपेक्षाकृत दूर थे। धर्मान्ध आक्रमणकारियोंने उनपर भी आक्रमण किये, किन्तु जितने आक्रमण मथुरापर हुए उतने भारतके किसी तीर्थपर नहीं हुए। जितनी बार मथुराकी निरीह जनताको कत्लेआम, लूट और सर्वस्व अपहरणका सामना करना पड़ा, उतना और किसी तीर्थस्थानको नहीं करना पड़ा। किन्तु मथुरावासियोंमें इतना जीवन इतना उत्साह इतना साहस, इतनी कर्मठता और इतनी निर्भीकता थी कि वे कभी इन अत्या-चारों, उत्पीड़नों, लूट, अपहरण, कत्लेआमसे हतोत्साह नहीं हुए। उनका मनोबल कभी नहीं गिरा। उन्होंने इन अमानुषिक अत्याचारोंके बावजूद मथुराको कभी खण्डहर नहीं होने दिया। उसे सदा आबाद रखा। वर्तमान मथुरावासियोंके नाड़ियोंमें उन्हीं वीर पूर्वजोंका रक्त प्रवाहित हो रहा है कि जिन्होंने भी कभी हार नहीं मानी, और इस सनातन नगरीकी सनातनताको अपनी कर्मठतासे सदा प्रमाणित करते रहे। किसी कविने क्या ठीक कहा है।

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
बाकी जहाँ में अब भी नामोनिशां हमारा॥

नामोनिशां ही नहीं, मथुरा आज भी सजीव, जीवन्त और उन्नतिशील है और यहाँके निवासियोंमें आज भी अपने वीर पूर्वजोंकी कर्मठता, आस्था और विश्वास बड़ी मात्रामें है। आज भी उनका मनोबल गगनचुम्बी है।

मथुराके इतिहासके सम्बन्धमें आप लोगोंको कुछ बतलाना धृष्टता होगी। अतएव हम उसके सम्बन्धमें अधिक न कहकर जन्मस्थानके इस मन्दिरकी कुछ चर्चा करना अधिक समी-चीन समझते हैं। मिश्रकी माइथोलोजीमें एक कल्पित चिड़ियाका नाम फीनिक्स है। वह अमर पक्षी माना जाता था जो कई सौ वर्ष जीवित रहनेके बाद अपनेको अग्निमें जला डालता था, और उसकी राखसे फिर उत्पन्न होकर सैकड़ों वर्ष जीवित रहता था। यह कम बराबर चलता रहता था। वह जलकर फिर जीवित हो जाता और अमर बना रहता। भगवान्का यह जन्मस्थान उसी अमर पक्षीकी भाँति अमर है। इस स्थानपर पहला मन्दिर कब और किसने बनवाया, इसका पता नहीं। किन्तु महाक्षत्रप शोड्स (ई० पू० ८० के लगभग) के शासन-कालका एक लेख यहाँ मिला है, जिसमें लिखा है कि वसु नामक किसी धनी भक्तने भगवान् वासुदेवके मन्दिरके लिए तोरण और वेदिका बनायी। इससे स्पष्ट है कि महाक्षत्रप शोड्स से बहुत पहले यहाँ भगवान् वासुदेवका मन्दिर विद्यमान था। गुप्त-सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने (३८०,३९० ई०) उस पुराने मन्दिरके स्थानपर एक विशाल मन्दिर बनवाया।

सन् ५०० ई० के लगभग तोरमाणके नेतृत्वमें भारतपर मध्य एशियाकी बर्बर जाति हूणोंका आक्रमण हुआ। उसने मथुरापर भी चढ़ाई की और उसने विक्रमादित्यके बनाये उस मन्दिरको एकदम नष्ट कर दिया। मध्य एशियाके बर्बरोंका मथुरा पर यह पहला आक्रमण था। उन्होंने कला और स्थापत्यके उत्कृष्ट नमूनोंको नष्ट कर अपनी असभ्यता और बर्बरताका परिचय दिया। किन्तु फीनिक्सकी तरह यह मन्दिर फिर प्रकट हुआ। इस बार प्रतीहार-वंशके एक राजाने उस स्थानपर फिर एक अत्यन्त भव्य मन्दिर बनवा दिया। किन्तु महमूद गजनीने अपने नवें आक्रमणमें मथुराको अपना शिकार बनाया और उसने प्रतीहारोंके बनाये जन्मस्थानके विशाल मन्दिरको ध्वस्त कर दिया। किन्तु हिन्दुओंकी प्रबल धार्मिक भावना इस तूफान और बर्बरतासे विचलित नहीं हुई। कन्नौजके गाहड़वाल राजा विजयपाल देवने (११५०,१२०० के बीच) यहाँ फिर एक अत्यन्त विशाल मन्दिर बनवा दिया। किन्तु (१४४८,१५१७ के बीच) दिल्लीके धर्मान्ध सुलतान सिकन्दर लोदीने उसे भी नष्ट कर दिया। सम्राट जहाँगीर ओरछाके वीरसिंहदेव जी बुन्देलासे बहुत उपकृत था। वीरसिंहदेवने उसका लाभ उठाकर जहाँगीरके शासनकालमें जन्मस्थानपर फिर एक विशाल मन्दिर बनवा दिया। उस मन्दिरकी भव्यताका अनुमान उन्हींके बनवाये वृन्दावनके गोविन्ददेव जीके मन्दिरके अवशिष्ट भागसे किया जा सकता है। उसकी विशालता और भव्यताका वर्णन तत्कालीन फ्रांसिसी यात्री टेवरनियरने बड़ी रोचक भाषामें किया है। किन्तु इस जन्मस्थानके मन्दिरपर फिर आपत्ति आयी। अपनी धर्मान्धताके कारण औरंगजेबकी शनि-दृष्टि उसपर पड़ी और सन् १६७० में उसे उसने नष्ट कर दिया। अभी तकके मन्दिर तोड़नेवाले मन्दिर तोड़कर चले जाते थे, किन्तु औरंगजेबने एक नयी बातकी। उसने मन्दिर तोड़ा ही नहीं; उसने उसके एक भागपर एक विशाल मस्जिद भी बनवा दी जो आपके सामने है। किन्तु अमर पक्षीकी तरह इस सनातन नगरीका यह शाश्वत जन्मस्थानका मन्दिर अमर और शाश्वत है। वह आज फिर हमारे आपके सामने अपनी राखसे जीवित हो रहा है और हमें विश्वास है कि वह हिन्दू-आस्था, विश्वास और धार्मिक भावना तथा श्रीकृष्ण भक्तिके अनुरूप ही विशाल और भव्य होगा। हम और आप भाग्यशाली हैं कि इस सनातन नगरीमें इस अमर मन्दिरका पुनर्निर्माण हमारे आपके सामने हो रहा है और हम आप इस महान् ऐतिहासिक घटनाके साक्षी हीन हीं, इसके भागीदार भी हैं। हम हिन्दू कालजयी और मृत्युजयी हैं। हमारे शरीर मरते हैं, किन्तु हमारी आत्मा अमर है। वह बार-बार नये शरीरमें जन्म लेती है। उसी प्रकार हमारे विश्वास, हमारी श्रद्धा, हमारे धर्म, हमारी भक्तिका बाह्य और स्थूल प्रतीक यह मन्दिर बार-बार भले नष्ट हो जाय, किन्तु वह नये रूपमें फिर उत्पन्न होकर अपने शाश्वत जीवन और अमरत्वका प्रमाण देता है। सोमनाथका मन्दिर भी अनेक बार नष्ट किया गया, किन्तु आज वह फिर अपने नये जीवनके साथ पश्चिमी समुद्रके किनारे गर्वोन्नत खड़ा हो गया है। उसी प्रकार हमारा यह जन्मस्थानका मन्दिर भी हिन्दू-आस्था और आस्तिकताका प्रतीक बनकर फिर अपने गर्वोन्नत गगनचुम्बी शिखरोंसे हिन्दू-धर्मके गौरवको विज्ञापित करके कोटि-कोटि भारतीयोंको सतत प्रेरणा देता रहेगा, इसमें कोई सन्देह करनेकी गुंजाइश नहीं है।

[श्रीकृष्ण-सन्देश

हूणोंने इस मन्दिरको नष्ट किया था। वे मुसलमान नहीं थे। वे वर्बर थे। मुसमानोंने कई वार इस मन्दिरको नष्ट किया। मध्ययुगीन धर्मान्धता इसका कारण थी। उन्होंने हिन्दू धर्म-स्थान ही नष्ट नहीं किये। इसा धर्मान्धताके कारण उन्होंने ईसाई गिरजोंके साथ भी यही सलूक किया था। उदाहरणके लिए हस्तवोलके सेन्ट सोफियाके प्रसिद्ध वाईजेन्टाइन गिरजेको भी उन्होंने मस्जिद वना दिया था। हम इसे हिन्दू-धर्मकी महात्ता समझते हैं और हमें गर्व है कि हिन्दू-शासकोंने किसी मस्जिदको नष्ट नहीं किया। इसी मथुरा और आगरामें कितने ही समयतक जाटों और मरहठोंका आधिपत्य रहा और यदि उनमें दूसरे धर्मोंके उपासना-गृहोंके प्रति हार्दिक आदर न होता और उसका धर्म उन्हें धार्मिक सहिष्णुता न सिखलाता तो वे यहाँ की मस्जिदोंको, विशेषकर उनको, जो उनके मन्दिरोंको तोड़कर उनके स्थानपर वनायी गई थीं, आसानीसे उसी प्रकार नष्ट कर सकते थे जिस प्रकार हिन्दू-मन्दिर नष्ट किये गये थे। किन्तु हिन्दू-संस्कृति इस धर्मान्धता और वर्बरतामें विश्वास नहीं करती। हमारी इसी उदारताके कारण उस धर्मान्धताके युगके स्मारकके रूपमें ये स्थान आज भी ज्योंके त्यों खड़े हुए हैं और हमें उस वर्बर युगकी याद दिला रहे हैं।

आज इस देशमें हिन्दू-मुस्लिम एकताका आन्दोलन जोरोंपर है। पागलखानेके वाहरका प्रत्येक व्यक्ति इस आन्दोलनका हृदयसे समर्थन करेगा। किन्तु ताली दो हाथोंसे बजती है यदि भारतके मुसलमान सचमुच हिन्दू-मुस्लिम मेल चाहते हैं तो उन्हे उसका कोई प्रमाण देना होगा और उन्हे कोई ऐसा काम करना होगा जो हिन्दूओंके हृदयको स्पर्श करके उसे द्रवित कर सके। इस देशमें मुसलमानोंने असंख्य हिन्दू-मन्दिरोंको नष्ट किया। उनमेंसे कितने ही मन्दिरोंका नींवपर उन्होंने मस्जिदें वनायीं। उन सवके सम्बन्धमें हम कुछ नहीं कहते और पुरानी बातोंको भूलनेको तैयार हैं। किन्तु यदि आज भारतके मुसलमान हिन्दुओंके प्रति सोहार्द प्रदर्शित करना चाहते हों तो उन्हें कम-से-कम अयोध्याके जन्मस्थान, काशीके विश्वेश्वर और मथुराके जन्मस्थानको हिन्दुओंको लौटा देना चाहिए। उनके इस कार्यका हिन्दुओंपर जो भावनात्मक और नैतिक प्रभाव होगा और उससे हिन्दुओंमें मुसलमानोंके प्रति जो सौहार्द उत्पन्न होगा, उसकी पूरी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कृतज्ञ और भावुक हिन्दू जनता मुसलमानोंकी इस सहृदयता और उदारताके आभार स्वरूप उनके वदले अपने व्ययसे ये मस्जिदें उन्हें भेंट कर देगी।

हमारे लिये यह अत्यन्त गर्व और हर्षका विषय है कि जन्मस्थानका यह अमर मन्दिर फिर जन्म ले रहा है। इसके लिए हम राजा पटनीमल और उनके उत्तराधिकारियों विशेषकर राय कृष्णदासके आभारी हैं, जिन्होंने इस स्थानको खरीदकर महामना मालवीयजीको भेंट कर दिया था। महामनाने हिन्दुओंके असंख्य उपकार किये। इस मन्दिरके नव-निर्माणकी कल्पना भी उनके उपकारोंकी शृङ्खलाकी एक कड़ी है। इस अवसरपर हम दानवीर श्रीजुगलकिशोर विड़लाके प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। वास्तवमें दानवीर श्रीजुगलकिशोरजी विड़लाकी प्रेरणा तथा सम्पत्तिसे ही यह भूमिखण्ड महामना मालवीयजी, गोस्वामी गणेशदत्तजी तथा डाक्टर भीखनलालजी आत्रेयके नाम खरीदा गया, किन्तु महामनाके जीवन-कालमें कोई

विशेष कार्य सम्भव नहीं हो सका। अतः उनके देहावसानके पश्चात् स्वर्गीय विरलाजीने ही श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघकी स्थापना की और उसके माध्यमसे पुनरुद्धार आरम्भ किया। जज श्रीभगवानदास भार्गवने मौन-भावसे जो सेवा की, वह भी स्मरणीय है। हम उन कार्यकर्ताओंकी चर्चा करना इस समय उपयुक्त नहीं समझते, जो हमारे बीच विद्यमान हैं। हमें विश्वास है कि वे सारे हिन्दू-समाजका सहयोग प्राप्त करके इस मन्दिरको भगवान् श्रीकृष्णकी गरिमा और हिन्दू-जातिके गौरवके अनुरूप बनायेंगे।

अन्तमें मैं दो एक सामान्य सुझाव देनेका दुःसाहस करता हूँ। इस मन्दिरमें उपयुक्त स्थानपर मन्दिरके प्राचीन निर्माताओंकी मूर्तियाँ स्थापित की जानी चाहिए, जैसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, प्रतीहार नरेश, गाहड़वाल महाराज विजयपालदेव, महाराज वीरसिंह देव आदिकी। राजा पटनीमल और महामना मालवीयकी मूर्तियाँ भी स्थापित की जानी चाहिए। यदि मूर्तियोंका प्रवन्ध न हो सके तो उनके चित्र ही तैयार किये जायें। प्रयत्न करनेपर ये मिल सकते हैं। उदाहरणके लिए, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका चित्र या मूर्ति उनकी मुद्रामें दिये हुएचित्रसे तैयारकी जा सकती है। इसके अतिरिक्त इस अमर मन्दिरका पूरा इतिहास भी जिसमें तत्कालीन लेखकोंके प्रिय और अप्रिय उद्धारणोंका उपयोग किया जाय, जगमण्डप या अन्य प्रमुख स्थानकी दीवालोंपर उन्हें अङ्कित किया जाना चाहिए। इन सुझावोंसे भावी पीढ़ियोंको प्रेरणा मिलेगी।

इस मन्दिरमें प्राचीन भागवत धर्म और उसके आधुनिक रूप अर्थात् श्रीकृष्णोपासनाका इतिहास भी अंकित होना चाहिए। महाभारतके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी गीताको प्रकाशमें लानेवाले महर्षि वेदव्यास और श्रीमद्भागवतके प्रवर्तक शुकदेवजीकी प्रतिमाओंको भी इसमें प्रतिष्ठित करना हमारा पवित्र कर्तव्य है।

भागवत धर्म और श्रीकृष्णभक्तिके प्रचारकोंकी स्मृति भी इस मन्दिरमें सुरक्षित रखनी चाहिए। भागवत धर्म और श्रीकृष्णभक्तिने सारे भारतमें सांस्कृतिक एकता स्थापित की थी। सुदूर पूर्वके मनीपुरके कृष्णलीला सम्बन्धी नृत्य सुदूर पश्चिम स्थित द्वारका और सौराष्ट्रके कृष्णभक्तिके भजन और लीलाएँ इसका प्रमाण हैं। स्वामी वल्लभाचार्य, माधवाचार्य निम्बार्काचार्य, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी, चैतन्य महाप्रभु, गीतगोविन्द रचयिता जयदेव, सूरदास, नरसी मेहता, मीराबाई आदिने श्रीकृष्णकी भक्ति और उनके सन्देशको जनतामें प्रचारित करके हिन्दू धर्मकी विशेषकर कृष्णभक्ति-शाखाकी अपूर्व सेवा की थी। इस नवीन मन्दिरमें भगवान् श्रीकृष्णके इन अनन्य भक्तोंकी स्मृतिको उचित रूपमें स्थायीरूपसे रखना उचित ही होगा। इससे आजके हिन्दू-समाजद्वारा उन महात्माओंके प्रति गहरे आभारका प्रदर्शन भी होगा।

मैंने आप लोगोंका वहुत समय लिया, इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। इस शाश्वत और अमर मन्दिरके शीघ्र सम्पूर्ण होने तथा आपके शिव-संकल्पकी सफलताके लिए भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना करते हुए मैं इस समारोहका औपचारिक उद्घाटन करता हूँ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

•

अपूर्व अन्वेषण

जगन्नारायणदेव शर्मा 'कविपुष्कर' शास्त्री

मुझे तो, बस, भरोसा है,
उसी भगवान्‌के ऊपर !
उसीको मैं रिझाता हूँ—
विनय - गुण - गानके ऊपर !

× × × ×

वही सबमें, सभी उसमें—
यही मेरी समझमें है !
उसे मैंने है अपनाया—
इसी अनुमानके ऊपर !
त्रिलोकी - तीन कालोंमें—
उसीकी एक है सत्ता !
पता उसका यही लगता;
सही पहचानके ऊपर !
सभी सद्ग्रन्थमें महिमा-
लिखी है उस निरालेकी !
हृदयको शान्ति मिलती है—
स्वयं अभिधानके ऊपर !
तो 'कविपुष्कर' उसे ध्याता-
लगाकर नेह औ नाता !
चतुर्वर्गादि फल पाता-
विदित वरदानके ऊपर !

•

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके रंगमंचपर

भागवत और रामायणकी कथाओंका आयोजन

फूलचन्द गुप्त

★

श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान, मथुराका रंगमंच कथा-प्रवचन और लीला-प्रदर्शन आदिके लिए ही निर्मित हुआ है। वहाँ आये दिन विविध उत्सवोंके आयोजन होते रहते हैं। परन्तु इस वर्ष कार्तिकमासमें श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानसकी कथाओंके जो आयोजन हुए, वे अभूतपूर्व थे तथा चिरस्मरणीय रहेंगे। इन आयोजनोंसे मथुराके नागरिकोंको बड़ा आध्यात्मिक लाभ पहुंचा है और जीवन-निर्माणकी प्रेरणा मिली है।

श्रद्धालु नर-नारियोंके आग्रहपर, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघकी ओरसे श्रीमन्माध्व-गौड़ेश्वराचार्य गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने वृन्दावनके बड़े-बड़े रससिद्ध कथाकारोंसे सम्पर्क स्थापित करके अनुरोध किया कि वे श्रीमद्भागवत-दशम स्कन्धके आधारपर योगेश्वर श्रीकृष्णकी ललित ललाम लीलाओंका वर्णन करें। आचार्योंने गोस्वामीजीका अनुरोध सहर्ष स्वीकार कर लिया और यह उद्गार प्रकट किया कि वे भगवान् श्रीकृष्णके पावन जन्मस्थलमें उनकी लीलाओंका वर्णन करके अपनेको भाग्यशाली समझेंगे।

तदनुसार आचार्य श्रीरासविहारीजी गोस्वामी, आचार्य श्रीनित्यानन्दजी भट्ट, आचार्य श्रीभक्तिदीपकजी, आचार्य श्रीनाथजी शास्त्री, आचार्य श्रीअतुलकृष्णजी गोस्वामी और आचार्य नृसिंहवल्लभजी गोस्वामीने क्रमशः व्यासासनपर विराजमान होकर कार्तिक-मास-पर्यन्त प्रतिदिन प्रातःकाल ७ बजेसे ९ बजे तक श्रीकृष्णकी मधुर बाल-लीलाओंका रसास्वादन कराया, जिससे सैकड़ों श्रोता भावविभोर हो उठे।

अन्तमें पूर्णिमाके दूसरे दिन गोस्वामिपाद श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने अपने पाण्डित्यपूर्ण प्रवचन द्वारा कथा-यज्ञका समापन किया और उपस्थित श्रोताओंको यह प्रेरणा प्रदान की कि

"आजके युगमें भागवत-धर्मका पालन करनेसे ही व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्रका मंगल हो सकता है।"

श्रीमद्भागवतके एक मास व्यापी इस प्रवचन-यज्ञका सारा प्रबन्ध संघके नवनिर्वाचित सदस्य श्रीसत्यपालजी अग्रवालने सँभाला। वक्तागण प्रतिदिन श्रीअग्रवालकी कार द्वारा वृन्दावनसे मथुरा आते और लौटते थे। सभी वक्ताओं तथा श्रोताओंने श्रीअग्रवालके सुप्रबन्धकी सराहना की।

श्रीमद्भागवतकी कथा चल ही रही थी कि श्रोताओंके सौभाग्यसे मानस-चतुश्शतीके उपलक्ष्यमें, श्रीरामचरितमानसके प्रवचनका भी कार्यक्रम बन गया और वह भी भारतप्रसिद्ध व्याख्याता, आचार्यप्रवर, पण्डितराज श्रीरामकिंकरजी उपाध्यायके श्रीमुखसे। वे संघके संयुक्त-मन्त्री श्रीदेवधर शर्माके निमन्त्रणपर ७ नवम्बरको मथुरा पधारे और श्रीमती कृष्णादेवी डालमिया अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि-गृहमें निवास करके उसी दिनसे रात्रिमें ७॥ बजेसे ९ बजेतक श्रीहनुमच्चरित्रपर प्रवचन करने लगे। श्रोताओंकी संख्या सैकड़ोंसे बढ़कर सहस्रों हो गयी। मथुराके बड़े-बड़े अधिकारी, विधि-विशेषज्ञ, प्राध्यापक और सम्भ्रान्त नागरिक नियमितरूपसे कथा-श्रवण करने लगे। कार्यक्रम २४ नवम्बर तक चला और सभी श्रोताओंने यह संकल्प किया कि आचार्यजीके प्रवचन द्वारा भक्तशिरोमणि श्रीहनुमानजीके दिव्यचरित्रका, जो जीवनोपयोगी चित्र उनके हृदय-पटलपर अंकित हुआ है, वह कभी धूमिल न हो, उन्हें प्रेरणा प्रदान करता रहे और उनका जीवन राममय बने।

कथा-समाप्तिके दिन मथुराकी सभी धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक संस्थाओंकी ओरसे पण्डितजीका अभिनन्दन किया गया तथा यह प्रार्थना की गयी कि वे समय-समयपर मथुरा पधारकर श्रीरामकथामृतका पान करानेकी कृपा करते रहें। श्रोताओंका प्रेम देखकर आचार्यजी भी भाव-विभोर हो गये और उन्होंने पुनः मथुरा आनेका आश्वासन दिया।

With Best Compliments From :

Kanoria Chemicals & Industries Ltd.

Manufacturers of :

* CAUSTIC SODA LYE
* LIQUID CHLORINE
* HYDROCHLORIC ACID (Commercial)
* STABLE BLEACHING POWDER
* BENZENE HEXA CHLORIDE (Technical)
* QUICK & SLAKED LIME
  (Chemical purity above 90%)

Head office :

9, Brabourne Road,

Calcutta-1

Factory :

P. O. Renukoott

Dist. Mirzapur (U. P.)

पं० श्री रामकिंकर जी उपाध्यायके श्रीमुखसे श्रीरामचरितमानसका
प्रवचन सुनता हुआ श्रद्धालु जन-समूह

नीतिवचनामृत

★

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥ (१०८।२६)
सद्भिरासीत सततं सद्भिः कुर्वीत संगतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रींच नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्॥
पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः।
बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेत न तु राज्ये खलैः सह॥ ३॥

—गरुडपुराणे (११३।२-३)

दुष्टोंके साथ कदापि कोई सम्बन्ध न रक्खो। सत्सङ्गका सदा ही सेवन करो। दिन-रात पुण्यकर्म किया करो। यह जगत् अनित्य है—इस बातको सदा याद रखो। सदा ही सत्पुरुषोंके साथ बैठो। संतोंके साथ ही संगति करनी चाहिए। सज्जनोंके साथ ही विवाद और मैत्री भी करें। दुष्टोंके साथ कुछ भी न करें। विद्वानों, विनयशील पुरुषों, धर्मज्ञों तथा सत्यवादियोंके साथ जेलमें भी रहना पड़े तो रहे, परन्तु दुष्टोंके साथ राज्यसिंहासनपर भी बैठनेका अवसर आवे तो न बैठे।

●

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधर शर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस ढुण्ढिराज, वाराणसी—१ में मुद्रित एवं प्रकाशित